आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष - २२ अक्टूबर - दिसम्बर - २००३ अंक : १० -१२

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

RAMAKRISHNA MISSION SEVASHRAMA
Vijnanananda Marg, Mutthiganj
Allahabad, 211003
Phone : 413369

AN APPEAL

Dear Friend,

Ramakrishna Math & Ramakrishna Mission Sevashrama at Allahabad was founded in 1910 by His Holiness Srimat Swami Vijnananandaji Maharaj (1868-1938), a direct disciple of Sri Ramakrishna, Since then this centre has been rendering services to the people of Allahabad without distinction of caste, class and creed.

Besides cultural, religious and spiritual activities, this Sevashrama is running (1) A Public Library with a collection of 28,500 valuable books on various subjects with its 744 members and a Reading Room which receives 14 dailies and 41 periodicals in Hindi, English and Bengali languages. Daily average attendance in the Library and Reading Room is 70.

(2) A Homeopathic-cum-Allopathic Dispensary with Pathology, Physiotherapy, ECG. Ultrasound and specialist consultancy services such as Eye, E.N.T., Dental, Gynecology. Orthopedic, Cardiology, Pediatrics and Medicines. Daily about 300 Patients are being benefitted by this dispensary.

There is a great need for the extension of The Library for increasing the Text Book Section and also for providing space for the students to study. Also the lecture hall needs extension for accommodationg more people as the present Lecture Hall hardly accommodates 150 persons and is inadequate to meet our requirements for holding functions like Bhakta Sammelan and Youth Convention etc.

Similarly, agreat need is felt for an operation theatre in the Dispensary along with male and female wards and also an X-Ray plant.

ESTIMATE OF FUNDS REQUIRED FOR

1. Extension of Library cum Lecture Hall — Rs. 18 lakhs
2. Extension of Dispensary Building including Operation theatre, — Rs. 22 lakhs
3. Male & Female wards and X-ray machine

Your generous donation for this holy cause will help us to run the activites smoothly and serve the people in a better way. We shall remain obliged for your contribution towards these cause. Your contribution will be thankfully acknowledged. Donation to Ramakrishna Mission Sevashrama are exempted from income Tax under Section 80G of the Income Tax Act, 1961. Please send your Cheque/Draft etc. in favour of "Rāmakrishna Mission Sevashrama" crossed and account payee.

With prayer to the Lord for your welfare.

Yours in the service of the Lord

(Swami Tyagatmananda)

।। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

अक्टूबर - दिसम्बर- २००३

सम्पादक
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक-सम्पादक
ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २२
अंक १०-१२

वार्षिक ६०/- एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(२० वर्षो के लिए) ७००/-
संरक्षक - योजना
न्यूनतम दान - १०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-
विवेक - शिखा
रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३६
संस्थापक प्रकाशिका
स्व0 श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

पृष्ठ

विवेक शिखा
के आजीवन सदस्य

१६४. स्वामी चिरन्तनानन्द . रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर
१६५. श्री हरवंशलाल पाहड़ा - जम्मूतवी, कश्मीर
१६६. श्री योगेश कुमार जिंदल - दिल्ली
१६७. डॉ. अखिलेश्वर कुमार - कनखल
१६८. श्री अनिल कुमार पूनमचन्द जैन - नागपुर
२००. श्री डी. एन. देशमुख - चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
१६६. डॉ० शीला जैन - बीकानेर
२०१. श्री योगेश कुमार पालिया, झुनझुनू (राजस्थान)
२०२. सचिव, रामकृष्ण वि. सेवाश्रम, अम्बिकापुर (म०प्र०)
२०३. श्री ओमभक्त बुडाथोपी - डाँग, नेपाल
२०४. श्री ए.डी. भट्टाचार्य - भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर (झारखण्ड)
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची (विहार)
२०६. श्रीमती शुभा कामत - मुम्वई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री पंकज कुमार, सुवंसिरी (अ० प्र०)
२११. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२१२. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१३. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१४. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१५. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१६. श्री नन्द लाल टांटिया, उत्तर काशी
२१७. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१८. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी
२१६. डॉ. दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२२०. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२१. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२२. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२३. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर

विवेक शिखा
के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रूपये या इससे अधिक रूपये "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू हैं।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

क्रम	नाम	स्थान	राशि
१.	श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	-३,०००/-
२.	श्री नन्दलाल टाँटिया	कोलकाता	-१,०००/-
३.	श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	-१,०००/-
४.	श्रीमती निभा कौल	कोलकाता	-१,०००/-
५.	डॉ. सुजाता अग्रवाल	कर्नाटक	-१,०००/-
६.	श्रीमती सुभद्रा हाकसर	कोलकाता	-५,०००/-
७.	स्वामी प्रत्यगानन्द	चेन्नई	-१,०००/-
८.	श्रीमती रंजना प्रसाद	रायपुर	-१,०००/-
६.	श्री जी.पी.एस. धिमीरे	काठमांडू	-१,०००/-
१०.	डॉ० निवेदिता बक्शी	कुर्ला पं०मु०	-१,०००/-
११.	श्री उमापद चौधरी	देवघर	-१,०००/-
१२.	श्री शत्रुधन शर्मा	फतेहवाद	-१,०००/-
१३.	श्री प्रभुनाथ सिंह	माने, विहार	-१,०००/-
१४.	श्री रामकृष्ण वर्मा	कोटा राजस्थान	-१,०००/-
१५.	श्री कीर्त्यानन्द झा	पटना, विहार	-१,०००/-
१६.	श्री रामअवतार चौधरी	छपरा, विहार	-१,०००/-
१७.	डॉ. निधि श्रीवास्तव	जमशेदपुर	-१,०००/-
१८.	श्री सतीश कुमार वंशल	दिल्ली	-१,०००/-
१६.	श्री उदयवीर शर्मा	खंडवाया उ०प्र०	-१,०००/-
२०.	श्री आर. वी. देशमुख	पुणे	-१,००१/-
२१.	कुमारी उषा हेगड़े	पुणे	-१,०००/-
२२.	श्री राजकेश्वर राम	छपरा, विहार	-१,०००/-
२३.	डॉ.(श्रीमती) नीलिमा सरकार	कोलकाता	-२,०००/-
२४.	श्री एन.के. वर्मा	मुम्चई	-१,०००/-
२५.	श्री अशोक राव	छिंदवारा	-१,१००/-
२६.	श्री मोती लाल खेतान	पटना	-१,०००/-
२७.	डॉ. प्रदीप कुमार बक्शी	कोलकाता	-१,०००/-
२८.	डॉ. शरत् मेमन	मुम्चई	-१,०००/-
२६.	श्रीरामकृष्ण आश्रम	मैसूर	-१,०००/-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष - २२ | अक्टूबर - दिसम्बर - २००३ | अंक : १० -१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

प्रवाह-का जल वेग से बहता हुआ किसी-किसी स्थान पर थोड़ी देर भँवर में घूमने लगता है, परन्तु फिर शीघ्र ही वह सीधी गति में वेग के साथ बह निकलता है। पवित्र हृदय, धार्मिक व्यक्तियों का मन भी कभी-कभी दुःख, निराश, अविश्वास आदि के भँवर में पड़ जाता है, पर वह अधिक देर तक उसमें अटका नहीं रहता, शीघ्र ही उससे छूटकर आगे निकल जाता है।

(२)

लड़का न होने पर लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, धन-सम्पत्ति नहीं मिली तो कितनी हाय-हाय करते हैं, परन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए कहकर कितने जन व्याकुल होकर रोते हैं ? जो सचमुच भगवान् को चाहता है वह उन्हें अवश्य पाता है।

(३)

दीपक का स्वभाव है प्रकाश देना। पर उस प्रकाश में कोई रसोई बनाता है, कोई जाली कार्रवाई करता है, तो कोई भागवत-पाठ करता है। परन्तु प्रकाश इन सब गुण-दोषों से निर्लिप्त है। इसी प्रकार, कोई तो भगवान् का नाम लेकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है, और कोई उसी नाम का पाखण्ड रच कर चोरी, ठगबाजी करता है परन्तु भगवान् इन सब से अलिप्त हैं।

(४)

विश्वास और ज्ञान में परस्पर सम्बन्ध है। विश्वास जितना बढ़ेगा, उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। विश्वास न हो तो ज्ञान की आशा करना वृथा है। जो गाय चुन-चुनकर खाती है वह दूध कम देती है। और जो गाय घास-पत्ती, कड़वी, चोकर-भूसा जो मिले वही गपागप खा जाती है वह घर्र-घर्र दूध देती है, उसके दूध की धार नहीं टूटती।

(५)

सन्ध्या - अह्निक आदि साधनाओं की आवश्यकता तभी तक है जब तक एक बार हरिनाम सुनते ही आँखों से प्रेमाश्रु की धारा न बहने लगे। भगवान् का नाम केवल सुनते ही जिसका हृदय व्याकुल होकर रोने लगे उसके लिए साधनाओं की कोई आवश्यकता नहीं।

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

मातृ - वनदना

- विदेह

अव जागों माँ कुण्डलिनी।
सर्पिणी रूप धारण कर कव से सोई हो जननी।।
अपना कर मार्ग सुपुम्ना, क्रमशः ऊपर को उठना,
चिर दिन का तमस मिटाकर, उत्फुल्ल करो उर-नलिनी।।
चिन्मयी चारु काया धर, आसीन वहीं तुम होकर,
मेरे जीवन में प्रतिक्षण, छेड़ो अनहत वीणाध्वनि।।

आनन्दमयी माँ आयो,
अन्तर का पद्म खिलाओ,
फैला है घोर अन्धेरा,
आलोक रश्मि विखराओ।।

आशा की मृगतृष्णा में,
मैं दौड़-दौड़कर हारा,
मुश्किल में पड़ा हुआ हूँ,
वस तेरा एक सहारा,
भ्रम दूर करो अपनाओ,
आनन्दमयी माँ आओ।।

मैं भटक रहा चिर दिन से
माया के गलियारों में,
तुमको विसरा जीवन से,
सुख - दुख के संसारों में,
अव श्रेय मार्ग दिखलाओ,
आनन्दमयी माँ आओ।।

○ ○ ○

सम्पादकीय सम्बोधन

कै हंसा मोती चुगै, कै भूखे मरि जाहि

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

उस दिन एक मित्र मेरे पास आये मिलने को। औपचारिक अभिवादन के उपरान्त उन्होंने कहा - 'छुट्टी थी। मन घर पर लगता नहीं था। सोचा, चलूँ, आप से मिल लूँ। मन भी लग जायगा और समय भी कट जायगा।' काफी देर तक इधर-उधर की बातें कीं उन्होंने। किसी एक विषय पर मन उनका अधिक देर तक ठहरता नहीं था। फिर किसी की तारीफ, किसी की शिकायतें! और अन्त में अचानक उठ कर चले गये वे माफी माँगते हुए -'आपका बहुत समय मैंने बर्बाद किया, क्षम कीजिएगा।'

शाम ढल आयी थी - एक उदास, अलस, आत्मस्थ, वीतरागी शाम। आँगन के एक पेड़ पर बहुत देर से एक चिड़िया टू-टू, टू-टू कर रही थी। कोई थकान नहीं, कोई बिखराव नहीं, कोई शीघ्रता नहीं। बस, एक आवाज छेड़ती जा रही थी, एक राग अलापती जा रही थी। पता नहीं , उस राग का क्या अर्थ था ? लेकिन गहराई से सुनने पर लगता था, यह टू-टू, टू-टू कोई प्रार्थना है, कोई आकुल पुकार है, किसी देवता को उतारने का आतुर अनुराग भरा अनुनय है, विनय है। कोई वंदना है जो रुकती ही नहीं। कोई स्वर की आरती है जो थमती ही नहीं। मैं काफी देर तक उस चिड़िया की निरर्थक किन्तु अनन्त अर्थमयी लगती-सी ध्वनिधार में बहता रहा, एकात्म होकर-निःशब्द, निस्पंद।

मेरे मित्र को छुट्टी थी और मन लगता नहीं था। वे इधर-उधर घूम-फिर कर मन लगाने का अभिनय करने को विवश थे। और जब मन लगाने का अभिनय किया जाता है, सच्ची चेष्टा नहीं, तब मन में ऊब पैदा होती है, थकान आती है, ठहराव नहीं आता, और हम इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

उस चिड़िया के सामने मन लगाने का प्रश्न नहीं था। बस वह जहाँ थी पूर्णता में थी। टू-टू कर रही है तो किये जा रही है-अनवरत, लगातार। नन्हीं-सी चिड़िया। मुट्ठी भर की चिड़िया। कहाँ से इतना दम मिला है उसे कि इतनी देर से टू-टू कर रही है ! हम करें तो थक जायँ और वह चिड़िया है कि टू-टू किये जा रही है। लगता है जिसे पुकार रही है उसे बुलाकर रुकेगी, जिसे गुहार रही है उसे निहार कर दम लेगी, जिसके लिए कंठ फाड़ रही है उसे अँकवार कर रहेगी ! यह है विकलता का वेग, आतुरता का आवेग, प्राणों की प्यास का उन्मेष जो उस चिड़िया को अथक, अलस, अश्रांत भाव से टू-टू किये जाने को प्रेरित-उत्प्रेरित कर रहा है।

हमारा इधर-उधर भटकना, मन लगाने के लिए जहाँ-तहाँ घूमना और जो-सो वातें करना आदि हमारे अस्वस्थ मन के परिचायक हैं। हम अपनी ओर देखने को तैयार नहीं हैं। हम आत्मान्वेषण, आत्मानुसंधान के लिए कुछ ठहरने, कुछ रुकने के लिए तैयार नहीं हैं। जरा सोचिए आप। हमारा आपका जीवन कैसा है ? कैसी है हमारी जिन्दगी की रुटीन? कैसा है हमारा वेला-चक्र ? क्या हम इससे संतुष्ट हैं ? सुवह में देर - सवेर उठना। चाय-पान, जलपान, बातें, स्नान-भोजन, दफ्तर आना-जाना, शाम को घूमना-टहलना, रात में गप्पें लड़ाना या सिनेमा, टी० वी०, वी० डी० ओ देखना और फिर खा-पीकर सो जाना। औसतन हमारा यही दैनिक कार्यक्रम हैं। जीवन के आखिरी दौर में अगर हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो लगता है हमने कुछ किताबें पढ़ी-लिखीं, दफ्तर और फाइलों में अनेक क्षण गुजारे, प्यार किया, विवाह किया, बच्चे पैदा किये, उनकी शिक्षा-दिक्षा, विवाह-नौकरी के लिए परेशानी उठायी और अंत में बीमारी मोल ले ली। अगर इसी बात के लिए हमें जन्म लेना है तो हम निश्चय ही अभिशप्त प्राणी हैं, अभागे हैं। कुछ ऐसा ही हाल हुआ था विद्यापति का और उन्होंने बुढ़ापे में गाया था -

आध जनम हम निंदहि गमायनु
जरा सिसु कत दिल गेला
निधुबन रमनि रभसि रंगे मातल
तोहें भजब कोन बेला
माधव हम परिनाम निरासा।

कि मेरी आधी जिन्दगी तो सोने में बीत गयी। बचपन और बुढ़ापे में भी कितने ही दिन गुजर गये। बची थी जवानी। उसे भी मैंने निकुंजों में रमणियों के साथ विलास में बिता दिया। हे कृष्ण, तुम्हें कब भजता ? अब तो केवल

निराशा ही परिणाम में रह गयी है।

हम सब की कमो बेश यही हालत है। हमारी इसी हालत पर कबीर को रोना आया था-

रात गँवायी सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय।।

हीरे-सी जिन्दगी हमारी कौड़ी के बदले जा रही है।

लेकिन नहीं, हम रोने-बिसूरने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। हम व्यर्थ घूमने-फिरने के लिए नहीं जन्मे हैं। हम अभागे और अभिशप्त प्राणी नहीं हैं। हम हैं आनन्द के पुत्र, अमरों की संतान। आनन्द हमारा स्वरूप है, उल्लास हमारा उत्सव। लेकिन हम अपने स्वरूप को भूल बैठे हैं। गँवा बैठे हैं हम अपनी पहचान। विस्मृत हो गयी है हमें अपनी अभिज्ञा। और इसीलिए हम चिड़ियों की तरह देर तक एक ही सुर में वन्दना की बाँसुरी टेर नहीं सकते, आत्मा की पुकार अपने प्रभु तक पहुँचा नहीं सकते! स्वभावतः हमें घूमना ही पड़ेगा जहाँ-तहाँ अपना मन लगाने के लिए।

आवश्यकता इस बात की है कि हम थोड़ा ठहरें। कुछ रुकें। जरा अपने भीतर झाँकें। शान्त, स्थिर-चित्त होकर। हम पायेंगे कि हमारे भीतर वृत्तियों का, विकलताओं का लालसाओं और कल्पनाओं का एक अश्वमेध यज्ञ वाला घोड़ा दौड़ रहा है और बेतहाशा दौड़ रहा है। कोई उसकी लगाम पकड़ने वाला नहीं है। हमें इस घोड़े को रोकना होगा। थामनी होगी इसकी लगाम। क्यों ? इसलिए, कि हम घोड़े की तरह दौड़ने के लिए पैदा नहीं हुए। हम पैदा हुए हैं अपने स्वरूप को जानकर-आत्मस्थ देवता को जानकर आनन्द में, परमानन्द में प्रतिष्ठित होकर जीने के लिए। क्या करना होगा इसके लिए ?

सबसे पहले है चयन। हमारी माँगों में सर्वप्रमुख माँग क्या है- इसका चयन। हमारी माँगें भौतिक हैं या आध्यात्मिक ? दैहिक है या आत्मिक ? सांसारिक हैं या ऐश्वरीय ? अगर हम देह-तल को भेद कर अपने शाश्वत स्वरूप को, आत्म-तत्त्व को या परमात्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं, और हमें यह करना ही चाहिए, तो हमें फिर दृढ़ संकल्पशील होना चाहिए। संकल्प-शुद्ध और दृढ़ संकल्प दूसरी अनिवार्यता है। साधनाएँ स्वयं संकल्प की दृढ़ता का अनुगमन कर लेंगी। संकल्प की दृढ़ता से ही ईश्वर के न उपलब्ध होने की विकलता भी जगेगी और विकलता जितनी गहरी होगी, ईश्वरानुभूति उतनी शीघ्र होगी। बेचैनी जितनी घनी होगी, प्रभु के मंदिर का द्वार उतनी तेजी से खुलेगा। छटपटाहट जितनी तीव्र होगी, आनन्द की अखंड ज्योति, शीतल, सुमधुर, दिव्य और परमोज्ज्वल ज्योति का मणिमय-मादक अवतरण भी उतना ही त्वरित होगा।

इसके लिए उम्र का कोई बंधन नहीं; कोई सीमा नहीं है। अभी से ही विकल हो जायँ हम। एक बार किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण से कहा, ''मेरी उम्र इस समय पचपन वर्ष है। मैं चौदह साल से ईश्वर की खोज में लगा हूँ। मैंने गुरु के उपदेशोंका पालन किया, सभी तीर्थ क्षेत्र हो आया, अनेकों साधु-सन्तों के दर्शन किए, पर कुछ तो लाभ नहीं हुआ।'' यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, ''मैं तुमसे कहता हूँ, जो ईश्वर के लिए व्याकुल होता हे, वह अवश्य उनके दर्शन पाता है। मेरी बात पर विश्वास रखो, धीरज रखो।'' - यह आश्वासन वाणी स्वयं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के मुख से निसृत हुई है। इसकी सत्यता में संदेह ही क्या हो सकता है।

कैसी विकलता चाहिए प्रभु के लिए ? श्रीरामकृष्णदेव का अमृत-वचन है-''भगवान् को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की व्याकुलता चाहिए, जानते हो ? सिर में घाव हो जाने पर कुत्ता जिस प्रकार बेचैन होकर दौड़ता फिरता है, भगवान् के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।'' अतः यदि हममें यह विकलता हो, सिर में घाव हुए कुत्ते वाली विकलता, तो प्रभु के दर्शन में विलम्ब कहाँ है?

प्रभु सर्वत्र और सदैव हैं तो फिर यहाँ भी हैं और अभी भी हैं। अगर वे अभी हैं और यहीं हैं, तो हमें कही भटकने की क्या जरूरत? प्रभु जो परम ऐश्वर्यमय हैं, सुन्दर हैं और सुखमय हैं, सत्, चित् और आनन्दमय हैं और अभी हमारे समक्ष ही हैं तब फिर किस आनन्द की तलाश के लिए हम यहाँ-वहाँ भटकेंगे? लेकिन हमारे संकल्प में बल तो होना चाहिए। 'कै हंसा मोती चुगै, कै भूखै मरि जाहि'-हंस या तो मोती चुगेगा, मोती खायगा अथवा भूख से मर जायगा। भूख से मर जाना उसे पसन्द है मगर मोती के अलावे कोई अन्य वस्तु खाना उसे स्वीकार्य नहीं। यह है जिद। यह है संकल्प। ईश्वरानुरागी को भी ऐसा ही हठी, ऐसा ही संकल्पी होना चाहिए। ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है, ईश्वर, ईश्वर और एकमात्र ईश्वर। हम अपने उस आत्मस्वरूप को, चिदानंद संदोह को, परम निरंजन परमेश्वर को पाकर

ही दम लेंगे, बाद में कुछ और करेंगे, - यही भाव है सबल संकल्प का। श्रीरामकृष्ण कहते थे-"इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त करूँगा। तीन दिन में प्राप्त करूँगा। एक ही बार उनका नाम लेकर उन्हें प्राप्त कर लूँगा।' इस प्रकार की तीव्र भक्ति होनी चाहिए तभी भगवत-प्राप्ति होती है। 'हो रहा है, हो जायगा' इस प्रकार की मन्द भक्ति ठीक नहीं।

स्वामी विवेकानन्दजी संकल्प की इसी दृढ़ता को पुरुषकार कहते थे। अपने एक शिष्य से उद्‌बोधन भरे शब्दों में उन्होंने कहा था- "मन में अनन्यता आने पर मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, इस जन्म में ही आत्मानुभूति हो जायगी। परन्तु पुरुषकार चाहिए। पुरुषकार क्या है जानता है? आत्मज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा; इसमें जो बाधा-विपत्ति सामने आयगी उस पर अवश्य ही विजय प्राप्त करूँगा-इस प्रकार के दृढ़ संकल्प का नाम ही पुरुषकार है। माँ, बाप, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र, मरते हैं तो मरें यह देह रहे तो रहे, न रहे तो न सही, मैं किसी भी तरह पीछे नहीं देखूँगा। जब तक आत्मदर्शन नहीं होता तब तक इस प्रकार सभी विषयों की उपेक्षा कर, एक मन से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होने की चेष्टा करने का नाम है पुरुषकार; नहीं तो दूसरे पुरुषकार तो पशु-पक्षी भी कर रहे हैं। मनुष्य ने इस देह को प्राप्त किया है केवल उसी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए, संसार में सभी लोग जिस रास्ते से जा रहे हैं, क्या तू भी उसी स्रोत में बह कर चला जायगा? तो फिर तेरे पुरुषकार का मूल्य क्या है?..... किसी की परवाह न कर, कितने दिनों के लिए है यह शरीर? कितने दिनों के लिए हैं ये सुख-दुःख? यदि मानव शरीर को ही प्राप्त किया है, तो भीतर की आत्मा को जगा और बोल-'मैंने अभयपद प्राप्त कर लिया है।"

लेकिन विषयानुराग और ईश्वरानुराग, संसार के प्रति प्रेम और प्रभु के लिए प्रेम साथ-साथ नहीं चल सकते। जब तक काम-कांचन के प्रति आसक्ति बनी रहती है तब तक ईश्वर में, आत्मानन्द में, मन नहीं लगता। यह नियम सब पर लागू है- वह चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी। अतः प्रभु में सच्ची निष्ठा के लिए, सात्विक श्रद्धा के लिए, वास्तविक अनुराग के लिए काम-कांचन से, विषयासक्ति से विरत होना नितान्त आवश्यक है। इसलिए आत्मानुभूति के लिए, ईश्वरानुभूति के लिए सर्वस्वत्याग करने का संकल्प लेकर चलना ही सच्ची जीवन-यात्रा है। इसे प्राप्त करने के लिए जो भी त्याग करना पड़े, करने को हमें तैयार रहना होगा। श्रीरामकृष्ण का अवतरण भी यही दिखाने के लिए हुआ था कि अनुभूति ही सार वस्तु है। इसी अनुभूति की प्राप्ति के लिए वे इस प्रकार छटपटाया करते थे जैसे भीगे तौलिए को निचोड़ा जा रहा हो। इसी से स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे - 'मूल वस्तु है अनुभूति। उसे ही उद्देश्य या लक्ष्य जानना-मत-पथ रास्ता मात्र है। त्याग को ही उन्नतिकी कसौटी जानना। जहाँ पर काम-कांचन की आसक्ति कम देखो, वह किसी भी मत या पथ का अनुगामी क्यों न हो -जान लेना, उसकी आत्मानुभूति का द्वारा खुल गया है..।"

जब हमारी आत्मानुभूति का द्वारा खुल जाता है तब फिर हमें मन लगाने के लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता। तब फिर सारा जगत् ही अनन्त प्रकाशपूर्ण प्रभु के आलोक का क्रीड़ा-स्थल दिखाई पड़ने लगता है। तब पेड़ के पत्तों की मर्मर-ध्वनि में प्रभु की मुरली की तान सुनाई पड़ने लगती है, उड़ती हुई बालुका के कण में कोई रास-लीला दिखाई पड़ने लगती है और किसी पक्षी के टू-टू में प्रार्थना का कोई अनाहत संगीत फूटता-सा प्रतीत होने लगता है। क्यों न हम इस आनन्द की अनभूति के लिए अभी से प्राण-पन से जुट जायँ- इस संकल्प के साथ कि -"कै हंसा मोती चुगै, कै भूखे मरि जाहि।'

भगवान् श्रीरामकृष्ण इसी आत्मानुभूति के लिए हममें सुदृढ़ संकल्प और दैवी प्रेरणा प्रदान करने की कृपा करें-यही मेरी उनसे प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण! जय स्वामी जी!!

❑

यह संसार कायरों के लिए नहीं है। पलायन की चेष्टा मत करो। सफलता अथवा असफलता की चिन्ता मत करो। निष्काम संकल्प में अपने को लय कर दो और कर्तव्य करते चलो। समझ लो कि सिद्धि पाने के लिए जन्मी बुद्धि अपने आपको दृढ़ संकल्प में लय करके सतत कर्मरत रहती है। कर्म में तुम्हारा अधिकार है, पर इतने पतित मत बनो कि फल की कामना करने लगो। अनवरत कर्म करो, पर अनुभव करो कि कर्म के पीछे भी कुछ है। सत्कर्म भी मनुष्य को महान बन्धन में डाल सकते हैं। अतः सत्कर्मों के, अथवा नाम और यश की कामना, बन्धनों से मत बँधो। जिन्हें इस रहस्य का ज्ञान हो जाता है वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, अमर हो जाते हैं।

-स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य नवम खंड, पृ० १९८)

कर्म योग

-स्वामी विवेकानन्द

मानसिक और भौतिक सभी विषयों से आत्मा को पृथक् कर लेना ही हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य के प्राप्त हो जाने पर आत्मा देखती है कि वह सर्वदा ही एकाकी रही है और उसे सुखी बनाने के लिए अन्य किसी की आवश्यकता नहीं। जव तक अपने को सुखी वनाने के लिए हमें अन्य किसी की आवश्यकता है, तव तक हम दास हैं। जव 'पुरुप' जान लेता है कि वह मुक्त है, उसे अपनी पूर्णता के लिए अन्य किसी की आवश्यकता नहीं, एवं यह प्रकृति नितान्त अनावश्यक है, तव कैवल्य-लाभ हो जाता है।

मनुष्य चाँदी की चंद टुकड़ों के पीछे दौड़ता रहता है और उनकी प्राप्ति के लिए अपने एक सजातीय को भी धोखा देने में नहीं हिचकता; पर यदि वह स्वयं पर नियंत्रण रखे तो कुछ ही वर्पों में अपने चरित्र का ऐसा सुन्दर विकास कर सकता है कि यदि वह चाहे तो लाखों रुपये उसके पास आ जायँ। तव वह अपनी इच्छाशक्ति से जगत् का परिचालन कर सकता है। किन्तु हम कितने निर्वुद्धि हैं!

अपनी भूलों को संसार को वतलाते फिरने से क्या लाभ? इस तरह उनका परिहार तो हो नहीं सकता। अपनी करनी का फल तो सवको भुगतना ही पड़ेगा। हम यही कर सकते हैं कि भविष्य में अधिक अच्छा काम करें। वली और शक्तिमान के साथ ही संसार की सहानुभूति रहती है।

केवल वही कर्म, जो मानवता और प्रकृति को मुक्त संकल्प द्वारा अर्पित करने के रूप में किया जाता है, वन्धन का कारण नहीं होता।

किसी भी प्रकार के कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति कोई छोटा या नीचा काम करता है, वह केवल इसी कारण ऊँचा काम करने वाले की अपेक्षा छोटा या हीन नहीं हो जाता। मनुष्य की परख उसके कर्त्तव्य की उच्चता या हीनता की कसौटी पर नहीं होनी चाहिए, वरन् यह देखना चाहिए कि वह कर्त्तव्यों का पालन किस ढंग से करता है। मनुष्य की सच्ची पहचान तो अपने कर्त्तव्यों को करने की उसकी शक्ति और शैली में होती है। एक मोची, जो कि कम-से-कम समय में बढ़िया और मजबूत जूतों की जोड़ी तैयार कर सकता है, अपने व्यवसाय में उस प्राध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जो अपने जीवन भर प्रतिदिन थोथी, वकवास ही किया करता है।

प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है और कर्त्तव्यनिष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है; वद्ध जीवों की भ्रान्त, अज्ञानतिमिराच्छन्न आत्माओं को ज्ञान और मुक्ति दिलाने में यह कर्त्तव्य-निष्ठा निश्चय ही वड़ी सहायक है।

जो कर्त्तव्य हमारे निकटतम है, जो कार्य अभी हमारे हाथों में है, उसको सुचारु रूप से सम्पन्न करने से हमारी कार्य-शक्ति वढ़ती है; और इस प्रकार क्रमशः अपनी शक्ति वढ़ाते हुए हम एक ऐसी अवस्था की भी प्राप्ति कर सकते हैं, जव हमें जीवन और समाज के सवसे ईप्सित एवं प्रतिष्ठित कार्यों को करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

प्रकृति का न्याय समान रूप से निर्मम और कठोर होता है। सर्वाधिक व्यवहार कुशल व्यक्ति जीवन को न तो भला कहेगा और न वुरा।

प्रत्येक सफल मनुष्य के स्वभाव में कहीं न कहीं विशाल सच्चरित्रता और सत्यनिष्ठा छिपी रहती है, और उसी के कारण उसे जीवन में इतनी सफलता मिलती है। वह पूर्णतया स्वार्थहीन न रहा हो, पर वह उसकी ओर अग्रसर होता रहा था। यदि वह सम्पूर्ण रूप से स्वार्थहीन होता, तो उसकी सफलता वैसी ही महान् होती, जैसी वुद्ध या ईसा की। सर्वत्र निःस्वार्थता की मात्रा पर ही सफलता की मात्रा निर्भर रहती है।

मानव जाति के महान नेता मंच पर व्याख्यान देने की अपेक्षा उच्चतर कार्य-क्षेत्र के हुआ करते हैं।

यदि हम पवित्रता या अपवित्रता का अर्थ अहिंसा या

हिंसा के रूप में लें, तब हम चाहे जितना प्रयत्न करें हमारा कोई भी कार्य पूर्णतया पवित्र या अपवित्र नहीं हो सकता। हम बिना किसी की हिंसा किये जी या साँस तक नहीं ले सकते। भोजन का प्रत्येक ग्रास हम किसी न किसी के मुँह से छीनकर ही खाते हैं, हमारा जीवन कुछ अन्य प्राणियों के जीवन को मिटाता रहता है। चाहे वह जीवन मुनष्य का हो, पशु का अथवा छोटे से कुकुरमुत्तों का, पर कहीं न कहीं किसी न किसी को हमारे लिए मिटना ही पड़ता है। ऐसा होने के कारण यह स्पष्ट ही है कि कर्म द्वारा पूर्णता कभी नहीं प्राप्त की जा सकती। हम अनन्त काल तक कर्म करते रहें, पर इस जटिल भूल-भुलैया से बाहर निकलने का मार्ग नहीं पा सकते। हम कर्म पर कर्म करते रहें, परन्तु उसका कहीं अन्त न होगा।

जो मनुष्य प्रेम और स्वतंत्रता से अभिभूत होकर कार्य करता है, उसे फल की कोई चिन्ता नहीं रहती। परन्तु दस कोड़ों की मार चाहता है और नौकर, अपना वेतन। ऐसा ही समस्त जीवन में है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक जीवन को ले लो। सार्वजनिक सभा में भाषण देने वाला या तो कुछ तालियाँ चाहता है या विरोध-प्रदर्शन ही। यदि तुम इन दोनों में से उसे कुछ भी न दो, तो वह हतोत्साह हो जाता है, क्योंकि उसे इसकी जरूरत है। यही दास की तरह काम करना कहलाता है। ऐसी परिस्थितियों में, बदले में कुछ चाहना हमारी दूसरी प्रकृति बन जाती है। इसके बाद है नौकर का काम, जो किसी वेतन की अपेक्षा करता है; 'मैं तुम्हें यह देता हूँ और तुम मुझे वह दो।' मैं कार्य के लिए कार्य करता हूँ'- यह कहना तो बहुत सरल है, पर इसे पूरा कर दिखाना बहुत ही कठिन है। मैं कर्मही के लिए कर्म करने वाले मनुष्य का दर्शन करने के लिए बीसों कोस सिर के बल जाने को तैयार हूँ। लोगों के काम में कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में स्वार्थ रहता अवश्य है। तुम मेरे मित्र हो, और मैं तुम्हारे लिए तुम्हारे साथ रहकर काम करना चाहता हूँ। यह सब दिखने में बड़ा अच्छा है; और प्रतिपल मैं अपनी सच्चाई की दुहाई भी दे सकता हूँ। पर ध्यान रखो, तुम्हें मेरे मत से मत मिलाकर काम करना होगा ! यदि तुम मूझसे सहमत नहीं होते, तो मैं तुम्हारी कोई परवाह नहीं करता। स्वार्थ सिध्दि के लिए इस प्रकार का काम दु:खदायी होता है। जहाँ हम अपने मन के स्वामी होकर कार्य करते हैं, केवल वही कर्म हमें अनासक्ति और आनन्द प्रदान करता है।

एक बड़ा पाठ सीखने का यह है कि समस्त विश्व का मूल्य आँकने के लिए मैं ही मापदण्ड नहीं हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन उसके अपने भावों के अनुसार होना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक जाति एवं देश के आदर्शों और रीति-रिवाजों की जाँच उन्हीं के विचारों, उन्हीं के मानदण्ड के अनुसार होनी चाहिए। अमेरिकावासी जिस परिवेश में रहते हैं, वही उनके रीति-रिवाजों का कारण है, और भारतीय प्रथाएँ भारतीयों के परिवेश की फलोत्पत्ति हैं; और इसी प्रकार चीन, जापान, इंगलैण्ड तथा अन्य हर देश के सम्बन्ध में भी यही बात है।

हम जिस स्थिति के योग्य हैं, वही हमें मिलती है। प्रत्येक गेंद अपने अनुकूल छिद्र में ही गिरती है। यदि किसी की योग्यता दूसरे से अधिक है, तो संसार इस निरंतर चलते रहने वाले विश्वव्यापी समायोजन की प्रक्रिया में उसे जान लेगा। अतः बड़बड़ाने से कोई लाभ नहीं। यदि कोई धनी आदमी दुष्ट है, तो उसमें कुछ ऐसे भी गुण होंगे जिनके कारण वह धनी बना; और यदि किसी दूसरे व्यक्ति में ये गुण हैं, तो वह भी धनवान बन सकता है। शिकायतों और झगड़ों से क्या लाभ ? उससे हम कुछ अधिक अच्छे तो बन नहीं जायँगे। जो अपने भाग्य में पड़ी हुई सामान्य वस्तु के लिए भी बड़बड़ाता है, वह हर एक वस्तु के लिए बड़बड़ायेगा। इस प्रकार सर्वदा बड़बड़ायेगा। इस प्रकार सर्वदा बड़बड़ाते रहने से उसका जीवन दु:खमय हो जायगा और सर्वत्र असफलता ही उसके हाथ लगेगी। परन्तु जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य को पूर्ण शक्ति से करता रहता है, वह ज्ञान एवं प्रकाश का भागी होगा, और उसे अधिकाधिक ऊँचे कार्य करने के अवसर प्राप्त होंगे।

जीवन की सीख

–श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज

(रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वर्तमान अध्यक्ष पूज्य श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज की चार खंडों में प्रकाकिशत विख्यात पुस्तक Eternal Values for a Chanqing Society से लेकर भारतीय विधा भवन ने Eternal Values Booklets नामक लघु पुस्तिकाओं की मालाएँ प्रकाशित की हैं। "What Life Has Taught Me" नामक लघु पुस्तिका इसी क्रम की २०वीं माला है। प्रस्तुत लेख उसी पुस्तिका के कुछ अंशों का डॉ. केदारनाथ लाभ द्वारा किया गया अनुवाद है जिसे पाठकों के हित के लिए यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। - सं.)

प्रस्तावना :- अपनी आत्मकथा लिखने में मेरी थोड़ी भी रुचि नहीं है, न मैं यही चाहता हूँ कि जब तक मैं अपने नश्वर शरीर का त्याग नहीं करता तब तक कोई भी मेरी जीवनी ही लिखे। परन्तु निश्चय ही मेरे जीवन ने मुझे कुछ सीखें दी हैं जिनका अभी मैं संक्षेप में उल्लेख करूँगा।

१२ या १३ वर्ष की उम्र में, अपनी माँ के सामने, मैंने एक व्यक्ति को कुछ अपशब्द कहे। मेरी माँ ने तुरन्त प्यार से फटकारते हुए मुझे यों कहा - 'मेरे बच्चे, तुम्हारी जिह्वा ज्ञान और प्रज्ञा की अधिष्ठात्री देवी वाणी या सरस्वती का आवास-स्थल है। इसे दूसरों को अपशब्द या भद्दी बातें कह कर दूषित मत करो।' माँ का यह सत्परामर्श सीधे मेरे हृदय और मस्तिष्क में प्रवेश कर गया तथा इन तमाम सत्तर या अस्सी वर्षों तक इस परामर्श का प्रभाव मुझ पर बना रहा है।

यद्यपि मेरा जन्म तथा एक लड़के के रूप में लालन-पालन एक गाँव में हुआ, जो सामान्यतः संकीर्ण दृष्टि उत्पन्न करता है, तथापि अपने ग्रामीण जीवन में भी मैं इससे वच निकला। मैंने अस्पृश्यता तथा जातीय-श्रेष्ठता के नियमों को तोड़ा तथा एक अछूत असामी (काश्तकार) दम्पति के हाथों से फल लेकर खाया करता था। बाद में, जव मैंने रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित होने के लिए घर का परित्याग किया तब वह युगल-दम्पति बहुत रोया था। जब मेरी माँ वीमार पड़ी तव मेरे परिवार को एक आयुर्वेद के चिकित्सक से दवा लानी थी। यह चिकित्सक मेरे घर से एक मील दूर एक नदी के पास रहता था जिस नदी के इस किनारे हमलोगों के धान के खेत और घर थे। हमलोगों का रसोइया नदी की धार के विपरीत नाव पर चढ़कर चिकित्सक से मिलकर दवा लाने को राजी हो गया, वशर्ते मेरी माँ के बड़े लड़कों में से कोई एक उसे नाव में ले जाने और बाँस के लग्गे से नाव खेने के लिये तैयार हो। मेरा कोई बड़ा भाई जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। जव मुझसे पूछा गया, मैं दो कारणों से तुरन्त सहर्ष तैयार हो गया। पहला कारण था माँ के प्रति प्यार तथा दूसरा कारण था जोखिम भरे साहसिक कार्य के प्रति प्रेम। हमलोग वैद्यराज से मिले और दवा ले आये। नाव को उस पार तक खेकर ले जाना और खेते हुए वापस आना, मेरे लिए एक खेल और आमोद-प्रमोद था। साहसिक कार्य से प्रेम तथा आराम देह जीवन के प्रति अरूचि तथा जर्मन दार्शनिक नीत्से का कथन 'जोखिम भरा जीवन जीओ', - ये भाव सदैव मुझमें बने रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत का मुझ पर प्रभाव -

लगभग १५ वर्ष की उम्र में, जब मैं ८वीं कक्षा में पढ़ रहा था, मेरे एक मित्र ने त्रिस्सुर नगर पुस्तकालय से अंग्रेजी में एक पुस्तक लायी और मुझसे पूछा, 'क्या तुम एक पुस्तक पढ़ना चाहते हो' ? मैंने कहा - 'हाँ'। उसने मुझे पुस्तक दी और चला गया। यह पुस्तक थी, प्रारम्भिक रामकृष्ण मठ, संस्करण की The Gospel of Sri Ramakrishna (श्रीरामकृष्ण वचनामृत)। ज्योंहि मैंने पुस्तक पढ़नी शुरु की, मैं उसमें तल्लीन हो गया और तब तक नहीं रुक सका जब तक मैंने उसके लगभग १०० पृष्ठ नहीं पढ़ डाले। मेरे हृदय में बिल्कुल तत्क्षण आश्चर्यजनक रूप से श्रीरामकृष्ण के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया। इसने मेरे

जीवन को एक गहराई और व्यापकता प्रदान करनी शुरू कर दी तथा मैंने तत्कालीन Complete works of Swami Vivekananda (विवेकानन्द साहित्य) के सात खण्डों, Gospel (वचनामृत) के दो खण्डों, भगिनी निवेदिता की पुस्तक The Master As I Saw Him (मेरे गुरुदेव) को पढ़ना तथा स्वामी अभेदानन्द विरचित 'प्रकृतिं परमाम्' से शुरू होने वाले 'श्री सारदा देवी स्तोत्रम्' को कंठस्थ करना शुरू कर दिया। इन सबने मेरे जीवन की भावी दिशा निर्धारित कर दी, जिसका अर्थ था ईश्वर के प्रति प्रेम तथा जाति, पन्थ, वंश और लिंग का विचार किये बिना अपने विभिन्न लोगों के प्रति प्रेम। और तीन वर्षों के पश्चात् मैंने गृह-त्याग कर दिया तथा मैसूर में नवस्थापित रामकृष्ण आश्रम में सम्मिलित हो गया। इस आश्रम के अध्यक्ष परम पावन एवं प्रीतिकर स्वामी सिद्धेश्वरानन्दजी थे जो त्रिस्सुर कोट्टिल मरार भवन के गोपाल मरार थे, जिनके पिता तत्कालीन कोचीन राज परिवार के द्वितीय राजकुमार थे, तथा जिन्होंने बाद में पेरिस में Centre Vedandique Ramakrishna (रामकृष्ण वेदान्त केन्द्र) की स्थापना की।

सिद्धेश्वरानन्दजी और मैंने मैसूर में सन् १९२७ ई० में महात्मा गाँधी से भेंट की तथा उन्हें प्रणाम किया। पुनः १९३६ या ३७ में उनसे बंगलोर में भेंट की। गाँधीजी की साप्ताहिक पत्रिका 'यंग इण्डिया' मैसूर स्थित हमारे आश्रम में आया करती थी तथा बड़े आनन्द से मैं उसके प्रत्येक अंक को सत्य एवं अहिंसा से अनुप्राणित होता हुआ तव तक पढ़ा करता था जब तक गाँधीजी ने इसका प्रकाशन बन्द कर दूसरी साप्ताहिक पत्रिका 'हरिजन' का प्रकाशन शुरू नहीं किया।

✦✦
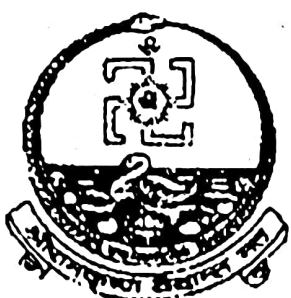
दुर्गापूजा का तात्पर्य

-स्वामी शशंकानन्द

पाठकों! भगवान् कृष्ण की वाणी है कि "मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको हीक प्राप्त होगा।" मन कैसा होना चाहिए वह तो आपने पढ़ा। अब बुद्धि कैसी हो यह भी हम जानें। वास्तव में यह आत्मा शुद्ध-बुद्ध मुक्त, अविकारी, अजन्मा, अमर है। यह ज्ञान की अवस्था होती है। लेकिन

"अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः"

जब ज्ञान अज्ञान से ढँक जाता है तो वह माया या प्रकृति के राज्य में फँस कर जीवात्मा कहलाता है। कब, कैसे और क्यों? इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा। बस वह फँस गया। त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रजस और तमस अविनाशी जीवात्मा को शरीर से बाँधते हैं। इनका वास स्थान बुद्धि है।

तमोगुण : अज्ञान से उत्पन्न तमोगुण देहाभिमानियों को मोहित करता है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति स्वयं को स्थूल एवं जड़ देह समझता हैं इसलिए वह जीवात्मा को प्रमाद (अर्थात् इन्द्रियों अन्तःकरण की व्यर्थ चेष्टाओं), आलस्य और निद्रा से बाँधता है। मोहिनी वृत्तियों वाली यह तामसिक बुद्धि उसे नहीं देखती जो है बल्कि जो नहीं है उसे देखती है। जैसे है रस्सी। पर बुद्धि अज्ञानांधकार में साँप देखती है। इसलिए ऐसी तामसिक बुद्धि धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानती है। उसे सब कुछ उल्टा दीख पड़ता है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति पशु, कीट-पतंग आदि योनियों को प्राप्त होता है।

रजोगुण : यह कामना और आसक्ति से उत्पन्न होता है। यह जीवात्मा को कर्मों और उसके फल से बाँधता है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति स्वार्थ सकाम, विषय लालसा, लोभ आदि प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता है। वह आसक्ति वाले मनुष्यों की योनियों को प्राप्त कर दुःख पाता है। धर्म और अधर्म का ज्ञान होते हुए भी कामना और आसक्ति के कारण क्या करूँ क्या न करूँ, धर्म पर चलूँ या अधर्म पर, यह निर्णय नहीं कर पाता।

सत्वगुण : सत्त्वगुण, निर्मल, प्रकाशवान और विकाररहित है। ऐसी बुद्धि वाला भगवद्-सुख और ज्ञान के सम्बन्ध से जीवात्मा को बाँधता है। चेतना और विवेक उसके लक्षण हैं। ऐसी बुद्धि वाला ज्ञान वैराग्य प्राप्त कर सुखी होता है।उसे दिव्यलोकों की प्राप्ति होती है।,

पाठकों! यह मास शारदीय दुर्गोत्सव की शहनाई और ढाक की आवाज से आकाश में गूँजता रहता है। माँ दुर्गा का आगमन होता है, पण्डाल लगते हैं, मूर्तियाँ बनती हैं, पूजा-अर्चना होती है, एक पवित्र आध्यात्मिक वातावरण में, भक्ति की सुगन्ध चारों ओर फैलाती है।

वह देखिए महिषासुर, तमसाचछन्न पशु शरीर जब, हमारे मनोराज्य में आता है तो दुःख, क्लेश, आतंक, भय, अत्याचार, अनाचार ही चारो ओर फैलता है। अधर्म को ही धर्म समझा जाता है। किन्तु रजोगुण सम्पन्न राजसिक सिंह आलस्य निद्रा प्रमाद को त्याग अत्यन्त तेज, कर्मरत और चंचल होता है। वह महिषासुर को अपने पंजों तले दबा देता है। अर्थात् तमोगुण को रजोगुण से दबाया जा सकता है। माँ भवानी का सिंह महिषासुर को जैसे दबाए हुए है वैसे ही राजसिक सिंह आलस्य निद्रा प्रमाद को त्याग अत्यन्त तेज, कर्मरत और चंचल होता है। वह महिषासुर को अपने पंजों तले दबा देता है। अर्थात तमोगुण को रजोगुण से दबाया जा सकता है। माँ भवानी का सिंह महिषासुर को जैसे दबाए हुए है वैसे ही राजसिक बुद्धि में तमस दब जाता है।

राजसिक वृत्ति बिना लगाम का घोड़ा होती है। यदि उस पर नियंत्रण न हो तो पता नहीं क्या कर देगी। उचित दिशा में भी जा सकती है और अनुचित दिशा में भी, क्योंकि वह धर्म या अधर्म किस दिशा में चले यह निश्चित नहीं कर पाती है। इसलिए उस पर सत्व का नियन्त्रण होना चाहिए। सत्त्व गुण स्वरूपा माँ दुर्गा रजोगुण स्वरूप सिंह पर खड़ी हैं। सिंह माँ दुर्गा से दबा हुआ है। अर्थात् सत्त्वगुण का नियंत्रण रजोगुण और तमोगुण दोनों पर ही है।

जिस व्यक्ति की बुद्धि सत्त्व गुण के अधीन रहती है वहाँ रजस भी कल्याणकारी हो उठता है और तमस निष्क्रिय हो जाता है तथा दुर्गति नाशिनी दुर्गा के साथ-साथ लक्ष्मी (धन-ऐश्वर्य), सरस्वती (ज्ञान), गणेश (सफलता-सिद्धि) और कार्तिकेय (बल, विजय एवं वीरता) प्राप्त होते हैं।

कुरीतियों पर घन की चोट और खण्डन हित सुधार के लिए

यह स्थिति थी जब स्वामी दयानन्द देश-भ्रमण के लिए निकले। उन्हें सुधार की चहुंमुखी लड़ाई लड़नी पड़ी। ब्राह्म समाज ने भी इन कुरीतियों, कुप्रथाओं और अन्धविश्वासों पर प्रहार किया, परन्तु वह पाश्चात्य सभ्यता से आतंकित था। स्वयं उसके नेता इस बात को अनुभव कर रहे थे। इसीलिए उनमें वह स्वाभिमान नहीं था, जो दयानन्द में प्रकट हुआ। दयानन्द ने कहा कि रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में फंसकर हम अपना सर्वनाश कर रहे हैं। जब इन रूढ़ संस्कारों की गन्दी पर्तों को एक बार तोड़कर देखेंगे, तभी सच्चा रूप दिखायी देगा। उन्होंने इन कुरीतियों पर घन की चोट की। शान्त सुधारक से अधिक वे उग्र क्रान्तिकारी के रूप में प्रकट हुए। उनकी दृष्टि में जो कुछ भारत के लिए आवश्यक था, उसपर वे चट्टान के समान दृढ़ हो गये। उन्होंने मानो उस द्वार की कुंजी को पा लिया, जो सहस्रों वर्षों से बन्द पड़ा था।

उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थों के साथ-साथ अन्य मत-मतान्तरों के धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन भी किया। उनके दोष दिखाते हुए उनपर प्रहार किये। ऐसा करने का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में यह था, "जो-जो सब मतों में सत्य बातें हैं, वे सबमें अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके, जो जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उनका खण्डन किया है। .... यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ, तथापि इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न करके यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति वालों के साथ भी बरतता हूं। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में बरतता हूं, वैसा विदेशियों के साथ भी। तथा सब सज्जनों को भी बरतना योग्य है।"

एक और स्थान पर उन्होंने कहा, "मेरा उद्देश्य सबको आपस में मिलाना है, जैसे जुड़े हुए हाथ। मैं कोल से लेकर ब्राह्मण तक में राष्ट्रीयता की ज्योति जगाना चाहता हूं। मेरा खण्डन हित सुधार के लिए है।"

उन्होंने किसी नवीन दर्शन का प्रचलन नहीं किया। परन्तु आधुनिक युग में वेदों को पण्डितों की पंचायत से निकालकर जन-साधारण के लिए सुलभ वना देने का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने नियम वना दिया कि "वेद सब सत्‌ विद्याओं की पुस्तक है। वेद को पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

उन्होंने मात्र संहिता (मन्त्र) भाग को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण माना। वे देवतावाद नहीं मानते थे। उन्होंने निरुक्तकारों की तीन देवों की पूजा, याज्ञकों की ३३ देवों की स्तुति और पाश्चात्य विद्वानों की अग्नि आदि जड़ वस्तुओं की आराधना का खण्डन कर एकेश्वरवाद की स्थापना की। उनके मत में वैदिक सूत्र विभिन्न नामों से एक ईश्वर के ही गीत गाते हैं। वे आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, इन तीनों को स्वतन्त्र रूप में स्वीकार करते हैं। वेद में इतिहास नहीं मानते। वैदिक शब्दों को यौगिक और योगरूप मानते हैं, रूढ़ि नहीं। उन्होंने निरुक्त प्रणाली को स्वीकार करते हुए कहा, "वेद में धर्म की ही नहीं, विज्ञान की भी सारी बातें प्रच्छन्न हैं।" उनकी इस मान्यता का श्री अरविन्द ने समर्थन ही नहीं किया, बल्कि उन्हें स्वामी जी से एक शिकायत भी रही। उन्होंने कहा, "वेदों में केवल धर्म ही नहीं, विज्ञान भी है।" दयानन्द के इस विचार से चौंकने की कोई बात नहीं। मेरा विचार तो यह है कि वेदों में विज्ञान की ऐसी बातें भी हैं, जिनका पता आज के वैज्ञानिकों को नहीं चला है। इस दृष्टि से देखने पर तो पता चलता है कि दयानन्द ने वेदों में निहित विज्ञान के सम्बन्ध में अत्युक्ति नहीं, बल्कि अल्पोक्ति से काम लिया।

वेदों में स्वामीजी की इतनी आस्था थी कि सन्‌ १८७७ के केसरी दरबार के अवसर पर, सब धर्मों में एकता स्थापित करने के लिए, जो कान्फ्रेंस उन्होंने बुलायी, उसमें उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि सब धर्मों के व्यक्ति वेदों को स्वीकार कर लें। परन्तु यह तो असम्भव को सम्भव करने जैसा था। वह कान्फ्रेंस सफल नहीं हो सकी। उसके आठ वर्ष बाद जनवरी, १८८५ में ब्राह्म समाज के एक नेता बाबू नवीनचन्द्र राय ने 'ज्ञान प्रदीप' में इस कान्फ्रेंस की चर्चा करते हुए लिखा था, "फिर दूसरी बार स्वामीजी की

मुलाकात हम लोगों से दिल्ली में १८७७ में केसरे हिन्द के दरबार के समय हुई। वहां उन्होंने हमें, बाबू केशवचन्द्र सेन और श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को निमन्त्रित किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक-पृथक धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें, तो अधिक फल होगा। इस विषय में बहुत बातचीत हुई, पर मूल विश्वास में हम लोगों का उनके साथ भेद था, इसलिए जैसा वे चाहते थे, एकता न हो सकी।''

मूल विश्वास में वह कैसा भेद था, इसकी चर्चा श्री पी. एस. बासु ने बाबू केशवचन्द्र सेन की जीवनी में की है, ''बाबू केशवचन्द्र सेन जब फिर दिल्ली में स्वामी दयानन्द से मिले, तो उन्होंने कहा कि वे बहुत बातों में उनसे सहमत हैं, लेकिन एक बात उनकी समझ में नहीं आती कि बिना वेद का सहारा लिये धार्मिक शिक्षा कैसे दी जा सकती है?''

इस कान्फ्रेंस में सर सय्यद अहमद ने भी भाग लिया था। एकता के ये प्रयत्न सफल नहीं हुए, परन्तु स्वामीजी के मन में यह प्रश्न बराबर जीवित रहा। तीन वर्ष बाद दिसम्बर, १८८० में उन्होंने सेण्ट्स पीटर्स चर्च, आगरा के विशप महोदय से कहा, ''यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान नेता केवल उन बातों का प्रचार करें, जिन्हें सब मानते हैं, तो एकता स्थापित हो सकती है और फिर मुकाबले पर नास्तिक ही रह जायेंगे।''

लेकिन विशप महोदय, स्वामीजी की यह बात भी स्वीकार नहीं कर सके। और उसके तीन वर्ष बाद राजस्थान में स्वामीजी का देहान्त हो गया। खण्डन-मण्डन की धुन्धकी गहरी पर्त को भेदकर यदि कोई दयानन्द के अन्र तक पहुंच पाता, तो निश्चय ही वह देखता कि वह व्यक्ति एकता के लिए कितना आतुर रहता था।

वेदों के सम्बन्ध में स्वामी जी की आस्था कितनी ही प्रबल रही हो, परन्तु दूसरे असंख्य अन्धविश्वासों पर उन्होंने गहरी चोट की। मूर्ति-पूजा और श्राद्ध को वैदिक धर्म के प्रतिकूल माना। बताया कि मृत्यु के बाद जीवात्मा पुनः जन्म लेता है, इसलिए श्राद्ध द्वारा उसे भोजन या जल पहुंचाने की कल्पना अवैज्ञानिक है। मन्दिरों में मूर्तियों पर जल चढ़ाना ईश्वर की पूजा का उचित साधन नहीं है। उचित साधन है दैविक गुणों को अपने अन्तर में संजोना। उस युग में समुद्र-यात्रा का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा, ''धर्म हमारी आत्मा और कर्तव्य के साथ है। जब हम अच्छा काम करते हैं, तो हमको देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर जाने में कोई दोष नहीं लगता। दोष तो पाप करने में लगता है।''

स्त्रियों और शूद्रों के मसीहा

स्त्रियों और शूद्रों के लिए तो वे मसीहा बन कर आये। उन्होंने 'स्त्री शूद्रोनाधीयाताम्' का खण्डन करके 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' आदि वाक्यों का मण्डन किया। लिखा, ''स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए।'' उनको वेद पढ़ने का अधिकार देते हुए कन्या के विवाह की आयु कम-से-कम १६ वर्ष नियुक्त की। वृद्ध विवाह को गलत माना। उनकी प्रेरणा पाकर 'असूर्यपश्याएं'' पहली बार घर की चारदीवारी से बाहर निकलीं। शुरू में वे विधवा विवाह का प्रचार केवल शूद्रों तक ही सीमित मानते थे, लेकिन पूना के अपने एक व्याख्यान में उन्होंने स्पष्ट कहा, ''ईश्वर के समीप स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं। क्योंकि वह न्यायकारी है। उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। जब पुरुषों को पुनर्विवाह की आज्ञा दी जाये, तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जाये ? प्राचीन आर्य लोग ज्ञानी, विचारशील, और न्यायी होते थे। आजकल उनकी सन्तान अनार्य हो गयी है। पुरुष अपनी इच्छानुसार जितनी स्त्रियां चाहें कर सकते हैं, देश, काल, पात्र और शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहा। क्या यह अन्याय नहीं है? क्या यह अधर्म नहीं है ?''

उन्होंने वर्णव्यवस्था को जन्म से नहीं, कर्म से माना और सब वर्णों के लिए समानाधिकार का प्रतिपादन किया। कहा, ''यदि परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादिके पढ़ाने-सुनाने का न होता, तो उसके शरीर में वाक् और श्रवण इन्द्रियां क्यों रचता ? .... जहां कहीं भी निषेध किया है, उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आये, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहलाता है।''

उन्होंने न केवल शूद्र, बल्कि अति शूद्र को भी जनेऊ

धारण करने का अधिकार दिया। अपने जीवन की सन्ध्या में तो वे वर्णव्यवस्था को मरणव्यवस्था तक मानने लगे थे।

इन विचारों की पृष्ठभूमि में आर्य समाज ने दलितोद्धार का काम किया। उन्हें शुद्ध करके उनके साथ सहभोज और किसी सीमा तक विवाह करने में भी कोई आपत्ति नहीं हुई। इसके परिणामस्वरूप इन जातियों में आत्मसम्मान की भावना जागृत हुई और वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठीं। मेघ जाति के लोग जहां पहले राजपूतों को 'गरीबनवाज' कहकर सम्बोधित करते थे, अब केवल 'नमस्ते' कहकर ही सम्बोधित करने लगे। कितने ही भंगी और चमार पण्डित और ठाकुर बन गये।

१८५७ की क्रान्ति के समय निश्चय ही स्वामी दयानन्द घूम-घूमकर देश में उठती हुई ज्वाला को देख रहे थे। उन्होंने समझ लिया था कि देश के स्वाधीन हुए बिना कुछ नहीं हो सकता। उनके ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर इसी भावना को स्वर मिला है। इस असफल क्रान्ति के २५ वर्ष बाद उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा, "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

उन्होंने स्वदेशी का पूर्ण समर्थन किया। नमक पर कर लगाने के भी वे विरोधी थे। किसानों में उनकी अपार श्रद्धा थी। उनके शब्दों में "राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है।"

स्वामीजी की इन मान्यताओं ने राष्ट्रीयता, उग्र राजनीति और समाज की राजनैतिक क्रान्ति-भावना को गति दी। इसीलिए देश को स्वतन्त्र कराने के जितने भी आन्दोलन चले, उनपर किसी-न-किसी रूप में आर्य समाज का प्रभाव रहा। यहां तक कि हिंसा के मार्ग से भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए कृतसंकल्प अनेक क्रान्तिकारी भी आर्य समाज के सदस्य थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, चौधरी रामभज दत्त, डॉ. सत्यपाल, भाई बालमुकुन्द गुप्त, राम प्रसाद बिस्मिल और मास्टर गेंदालाल आदि कुछ ऐसे नाम हैं, जो भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे। और सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगत सिंह भी तो एक आर्य समाजी परिवार के ही सदस्य थे। लोकमान्य तिलक और दादा भाई नौरोजी आदि राष्ट्र-नेता स्वामी जी की राष्ट्र-भक्ति से बहुत प्रभावित थे। दादा भाई तो यहां तक कहा करते थे कि उन्होंने 'स्वराज्य' शब्द स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश से सीखा।

देश के प्रति इतनी ममता होने के कारण यह स्वाभाविक था कि उन्हें देश को एक करने वाली किसी एक भाषा से प्रेम हो। उनकी मातृभाषा गुजराती थी। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। १८७२ में जब वे कलकत्ता पहुंचे, तब तक वे सरल संस्कृत में ही बात करते थे। वहां पर ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन ने उनको सुझाया कि वे प्रचलित देशी भाषा में अपने उपदेश दिया करें, ताकि आम जनता उन्हें समझ सके।

यद्यपि उस समय उनकी आयु ४८ वर्ष थी, फिर भी केशव बाबू की यह सलाह स्वीकार करके उन्होंने प्रचलित देशी भाषा 'हिन्दी' सीखी। और उसके बाद उसी भाषा में बोलना और लिखना शुरू कर दिया। कुछ ही दिन बाद उन्होंने कहा, "दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नगरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।"

उन्हें दूसरी भाषाओं से द्वेष नहीं था। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, "जब पांच-पांच वर्ष के लड़का-लड़की हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।"

जिस समय सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशित हुआ, उस समय वे पचास वर्ष के थे। भाषा सीखते हुए उन्हें केवल दो ही वर्ष हुए थे। गलती रह जाना स्वाभाविक था। द्वितीय संस्करण की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है, 'संस्कृत ही बोलने

तथा जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी।''

लेकिन दिन-रात तीव्र व्यंग्ययी शैली में वाद-विवाद करते रहने के कारण उनकी भाषा-शैली सरल और सशक्त होती चली गयी। मुहावरों का भी उन्होंने बड़ा समुचित प्रयोग किया है। उन्होंने आर्य समाज का यह नियम बना दिया था कि प्रत्येक आर्य तथा आर्य सभासद को आर्य भाषा तथा संस्कृत जानना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत के गढ़ काशी और उर्दू के गढ़ पंजाब में हिन्दी की लोक प्रियता बढ़ी और इन दोनों भाषाओं का हिन्दी पर प्रभाव हुआ। शिक्षा का माध्यम देशीय भाषाएं होनी चाहिए, यह आवाज भी सबसे पहले आर्य समाज ने ही उठायी। गुरुकुलों में इस सम्बन्ध में क्रियात्मक परीक्षण हुए। अनेक वैज्ञानिक विषयों पर मौलिक ग्रन्थ लिखे गये। पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हुआ। गुरुकुल कांगड़ी में सबसे पहले हिन्दी के माध्यम द्वारा वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा दी जाने लगी। केवल हिन्दी पढ़ने के लिए अनेक विदेशी विद्वान गुरुकुल आये। और इस तरह हिन्दी अनायास ही राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी।

शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वामी जी का योगदान कई दृष्टियों से अत्यन्त मौलिक रहा है। यद्यपि उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया, तथापि बालक-बालिका सबके लिए शिक्षा पाना अनिवार्य करके उन्होंने निरक्षरता पर गहरी चोट की। उन्होंने विधान किया कि बालक २५ वर्ष तक और कन्या १६ वर्ष तक गुरुकुल में रहते हुए शिक्षा पायें। दोनों को वेद-वेदांगों की शिक्षा के साथ-साथ राज-विद्या, शिल्प, गणित, ज्योतिष, भूगोल, चिकित्सा आदि शास्त्रीय और व्यावहारिक विषयों तथा देश देशान्तरों की भाषा का ज्ञान भी कराया जाये, ऐसा स्वामीजी का अभिप्राय था।

विज्ञान के अध्ययन पर जोर

इस प्रकार प्राचीन संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए भी उन्होंने विज्ञान के अध्ययन पर निरन्तर जोर दिया और जो नया है, उसको ग्रहण करने की दृष्टि रखी। आज वे भले ही पुराने पड़ गये हों, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक निरन्तर विकसित होते रहे थे। ही वैज्ञानिक दृष्टि है। उनके जीवन में संकीर्णता का भी अभाव था। पादरी स्काट और सर सय्यद अहमद जैसे व्यक्ति उनके परम मित्र थे। लाहौर में आर्य समाज की स्थापना के लिए जब किसी हिन्दू ने स्थान नहीं दिया, तब एक मुस्लिम भद्र पुरुष के घर पर ही उसकी स्थापना की गयी थी।

एमर्सन ने कहीं लिखा है कि बड़े होने के साथ एक शर्त है गलत समझा जाना। हर महापुरुष की यही नियति रही है; स्वामी दयानन्द की विशेष रूप से , क्योंकि उन्होंने अनेक बाधाओं से जूझते हुए गहन अन्धकार में से होकर मार्ग बनाया था। इसीलिए उनमें सन्तों की नम्रता और निरंकारिता नहीं दिखायी देती, परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत के सांस्कृतिक व राष्ट्र के नवजागरण में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी मान्यताओं और सिद्धान्तों ने एक बार तो हीन भावग्रस्त इस जाति को अपूर्व उत्साह से भर दिया था, और अन्धविश्वास तथा कुरीतियों के जाल से मुक्त होकर उसने गतिमय प्रगति के मार्ग को अपनाया था। वही मार्ग आज हमें वैज्ञानिक युग में ले आया है। (धर्मयुगः २६ अक्टूबर, १९६७ से साभार-सं)

सामान्य संन्यासी संसार त्याग देता है, बाहर निकल कर भगवान् का चिन्तन करता है। सच्चा संन्यासी तो संसार में ही रहता है; पर उसका बनकर नहीं। जो आत्म-निग्रह करते हैं, जंगल में रहते हैं और अतृप्त वासनाओं की जुगाली करते रहते हैं, वे सच्चे संन्यासी नहीं हैं। जीवन-संग्राम के मध्य डटे रहो। सुप्तावस्था में अथवा एक गुफा के भीतर तो कोई भी शान्त रह सकता है। कर्म के आवर्त और उन्मादन के बीच दृढ़ रहो और केन्द्र तक पहुँचो और यदि तुम केन्द्र पा गये तो फिर तुम्हें कोई विचलित नहीं कर सकता।

-स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द की जीवन्त दुर्गा

-स्वामी देवेन्द्रानन्द

(बंगला भाषा की "बेलुड़ मठ में स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा प्रथम दुर्गापूजा" नामक पुस्तक के दूसरे अध्याय 'जीवन्त दुर्गा' का हिन्दी रूपान्तरण)

बेलुड़ मठ में परम्परागतज दुर्गापूजा की यह पटकथा है, परन्तु मठ में मिट्टी की मूर्ति लाकर आराधना करने से पहले स्वामीजी ने जीवन्त मूर्ति प्रतिष्ठा का ध्यान व परिकल्पना भी की थी। स्वामीजी की जीवन्त दुर्गा थीं श्रीरामकृष्ण संघ जननी माँ सारदामणि देवी।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा परिकल्पित जीवन्त दुर्गा प्रतिष्ठा के विषय से सम्बन्धित उस ऐतिहासिक पत्र में उल्लिखित विषय वस्तु की यहाँ चर्चा करना प्रासंगिक है। १८९३ ई. में अमेरिका से जिस समय स्वामी जी ने अपने प्रिय गुरु भाई स्वामी शिवानन्द जी को पत्र लिखा उस समय विश्वधर्म महासभा में स्वामीजी की जय-जयकार हो रही थी। यह जय जयकार श्रीरामकृष्ण एवं सनातन हिन्दू धर्म की थी। इस समय स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण भावान्दोलन को विश्वव्यापी एवं सक्रिय करने के उद्देश्य से एक स्थायी केन्द्र व मठ की स्थापना की परिकल्पना भी की थी। यह प्रेरणा स्वामीजी को शक्ति स्वरूपिणी श्री माँ सारदा देवी से प्राप्त हुई थी। उस समय तक बेलुड़ मठ की स्थापना नहीं हुई थी।

श्रीरामकृष्ण के अंतरंग शिष्यगण पहले वराहनगर में एक जराजीर्ण घर में (जो भुतहा बंगला के नाम से प्रसिद्ध था) कुछ दिन रहने के पश्चात इस व्यवहार अयोग्य घर को छोड़कर, कलकत्ता के आलमबाजार अंचल में एक दूसरे किराया के मकान में आये। विश्वधर्म महासभा में विजय लाभ प्राप्त करने के बाद स्वामीजी ने भारत वर्ष की उन्नति के लिए जो नयी परिकल्पना की उसमें एक स्थायी केन्द्र व मठ की स्थापना की योजना भी थी।

शक्ति स्वरूपिणी माँ सारदा देवी के विषय में स्वामी शिवानन्दजी को लिखित उक्त ऐतिहासिक पत्र के कुछ अंश: "माताजी क्या वस्तु हैं वह मैं समझ नहीं पाया, अभी इसे कोई भी समझ नहीं पाये हो, क्रमानुसार उसे समझोगे। भाई! शक्ति के बिना जगत का उद्धार नहीं होगा। हमारा देश सभी में अधम (पीछे) क्यों है, शक्तिहीन क्यों है? शक्ति की अवमानना है इसलिए। माताजी भारत में पुनः उस महाशक्ति को जागृत करने आयी हैं ताकि उनका अवलम्बन कर फिर सब गार्गी मैत्रेयी जगत में जन्म लेंगी। क्या देख रहे हो भाई, क्रम से सब समझोगे। इस कारण उनका मठ सर्व प्रथम चाहिए। अमेरिका यूरोप में मैंने क्या देखा? शक्ति की पूजा। शक्ति की पूजा की भी वेअनजाने पूजा करते हैं, कामना के द्वारा करते हैं। और जो विशुद्ध भाव से, सात्विक भाव से एवं मातृभाव से पूजा करेंगे उनका क्या कल्याण न होगा! मेरी दृष्टि स्पष्ट हो गयी है। दिन प्रतिदिन सब समझ में आ रहा है। इसलिए माताजी का मठ सर्वप्रथम करना होगा। पहले माताजी और उनकी पुत्रियाँ तत्पश्चात पिता और उनके पुत्र, क्या इसे समझ पा रहे हो?

"......... इस भीषण ठंढ में जगह-जगह भाषण करते हुए लोगों को समझाते हुए राशि की व्यवस्था कर रहा हूँ- माताजी का मठ होगा।

"बाबूराम की माता को वृद्धावस्था में बुद्धिभ्रम हुआ है, जीवन्त दुर्गा को छोड़कर मिट्टी की दुर्गा की पूजा करने चली हैं। भाई, विश्वास बड़ा धन है, भाई जीवन्त दुर्गापूजा दिखाऊँगा तभी मेरा नाम है। तुम जमीन खरीदकर जिस दिन जीवन्त दुर्गा माता की स्थापना करोगे, उस दिन मैं अपने को धन्य समझूँगा। इसके पहले मैं स्वदेश नहीं लौट रहा हूँ। जितना शीघ्र हो सके इस कार्य के लिए राशि भेजने पर मैं अपने को धन्य समझूँगा :- "तुमलोग व्यवस्था करके मेरे इस दुर्गोत्सव को कर सको तो जानूँ।"

कितनी आनन्द की कहानी है, हे माता उमाँ

एक समय (संभवतः सन् १८९१ में) जयरामबाटी गाँव में एक वैरागी (हरिदास) प्रायः आकर सारंगी बजा-बजाकर दाशरथीराय रचित आगमनी गान गाया करते थे -

"कितने आनन्द की बात है माँ,
हे माँ लोगों के मुँह से जो सुनता हूँ क्या वह सत्य है,
कहो शिवानी क्या काशीधाम में तुम्हारा अन्नपूर्णा नाम है?
अपर्णा जव तुम्हें अर्पण किया था।
भोलेनाथ थे मुट्ठी भर अन्न के भिखारी।
अब लगता है उनके द्वार पर पहरेदार हैं।
उनके दर्शन नहीं पाते हैं, इन्द्र, चन्द्र और यम।
फिर दिगम्वर को सव पगला कहते थे,
कितना भला-वुरा सहा है मैंने घर और वाहर में।
अव तो सुन रहा हूँ वे काशीपुर के राजा हैं,
विश्वेश्वरी तुम विश्वेश्वर के वायें में (विराजमान) हो।"

इस गाने को सुनकर माता श्यामा सुंदरी देवी की आँखें आंसू से भर जाती थीं - वह गाना मानों उनकी कन्या सारदामणि के जीवन से जुड़ा संगीत हो। उनकी आँख में आनन्द अश्रु दिखायी पड़ते थे, वार-वार इस गाने को सुनकर भी मानों तृप्ति नहीं होती थी। आवेग से वे उपस्थित सव से कहती थी-"अरे उस समय सभी जमाई (ठाकुर) को पागल कहते थे, सारदा के भाग्य को धिक्कार दिया करते थे। हमें भी कितनी वातें सुनाते थे, मन ही मन दुःख से मर जाती थी। और आज देखो कितने वड़े-वड़े घर के लोग देवी जानकर सारदा की पद पूजा कर रहे हैं।"

सत्य ही, इस कन्या के लिए कहाँ-कहाँ से कितनी वातें उन्हें सहनी पड़ीं? यह वात जयरामवाटी गाँव में सव लोग जान गये थे- दक्षिणेश्वर में उनका जमाई माँ काली का पुजारी न होकर पागल हो गये हैं - रात-दिन केवल माँ, माँ कहकर रोते हैं। और वह सव वातें सुनकर गाँव की वहुएँ और लड़कियाँ आपस में कानाफूसी करती थीं।-"ऐ माँ! श्यामा की लड़की की, पगला जमाई (ठाकुर) के साथ शादी हुई है।" और इसे सुनकर लड़की के दुःख से माँ का हृदय टूट जाता था। सोचती थी सव भाग्य का खेल है! परन्तु इस हृदय विदीर्ण दुःख के वीच में भी श्यामा सुन्दरी देवी समय-समय पर थोड़ा सांत्वना पाती थी जव उस गाँव की ही शुद्ध स्वभाव वाली भानु वुआ अकर खूव जोरों से उन्हें कहती थी- वहू माँ, तुम्हारा जमाई, शिव, साक्षात कृष्ण है, अभी जो विश्वास नहीं कर पा रही हो वाद में इसे स्वीकार करोगी कहे देती हूँ।

सारदामणि देवी भी इस वात को जानती थीं। गिरिराज की कन्या उमा की तरह ही जानती थी पति के आत्मभोला स्वरूप को। जानती थी गाँव में जो कहा जा रहा है वह सत्य नहीं है। उनका देवतुल्य पति पागल हो नहीं सकता। उनका मन दक्षिणेश्वर में ही पड़ रहता था- वहाँ जाकर पतिदेव की सेवा यत्न के लिए व्याकुल होकर यहाँ दिन काटती थीं। यह सुयोग भी उनके लिए आ गया। उस समय (चैत माह १२७८ वंगला संवत) कोई एक पर्व के उपलक्ष्य में गाँव से अनेक लोग कलकत्ता आये थे गंगा स्नान करने। उस समय सारदामणि देवी ने भी सोचा "सव लोग ऐसा कह रहे हैं, मैं जाकर, एकवार देख आती हूँ; वे कैसे हैं। "उनके पिता कन्या के मन के भाव को समझकर उन्हें लेकर पैदल ही दक्षिणेश्वर जाने के लक्ष्य से रवाना हुए। अनेक कष्ट से सारदामणि देवी के दक्षिणेश्वर पहुँचने पर उनके आत्मभोला स्वरूप पति ने उन्हें सादर स्वीकार किया। इसे देखकर सारदामणि देवी ने समझा, गाँव में जो कहा सुना जा रहा है वह असत्य है, सव मिथ्या है। उनके पति पागल कहाँ हैं- वे तो दक्षिणेश्वर के भक्तों के राजा हैं। उनको लेकर वहाँ पर आनन्द का वातावरण है- पति उनके आश्रित-वात्सल्य हैं- जो उनके शरणागत हैं उनको आश्रय दे रहे हैं - दिखा रहे हैं भक्ति, मुक्ति का पथ।

इसलिए जयरामवाटी में उस वैरागी का गाना सुनकर श्री माँ सारदा देवी के जीवन की उस अध्याय की कथा तव सवको याद आ जाती थी। उस गाना को सुनकर अनेकों रोते थे, जिस प्रकार रोती थी श्यामा सुंदरी देवी साथ ही साथ जोगिन माँ, गुलाव माँ- सारदामणि की दो सहेलियाँ। इतना ही नहीं जव महाकवि गिरिश चन्द्र घोष कलकत्ता से आते थे, इस गाना को सुनकर वे अपने आंसू रोक नहीं पाते थे। माताजी को समझते - "माँ जगदम्वा, जगत जननी हैं।"

विश्व प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विवेकानन्द की वात तो पहले ही कही जा चुकी है, माँ सारदामणि उनके लिये थीं साक्षात 'जीवन्त दुर्गा'।

प्रथम दुर्गा पूजा

वेलुड़ मठ में शारदीय दुर्गा पूजा का प्रारम्भ हुआ सन् १९०१ में। स्वयं विवेकानन्द द्वारा ही यह पूजा प्रथम

अनुष्ठित हुई एवं परम अराध्या श्री श्री माँ सारदा देवी भी इस पूजा के समय बेलुड़ मठ में उपस्थित थीं, स्वामी विवेकानन्द की इच्छानुसार। श्री श्री सारदा माता के नाम से ही इस पूजा का संकल्प किया गया (आज भी वही धारा चली आ रही है)। वास्तव में संन्यासीगण संकल्प करके कोई भी पूजा अथवा वैदिक कर्मकांड करने के अधिकारी नहीं हैं। अतः आदर्श गृहस्थ आश्रमी श्री श्री माँ सारदादेवी के (यद्यपि त्याग-तपस्या में वे संन्यासियों की भी शिरोमणि हैं) नाम से बेलुड़ मठ में दुर्गा पूजा अनुष्ठित होती है। यह विषय अत्यंत ही अभिनव इस कारण से है कि श्री श्री माँ सारदा देवी के शरीर त्याग के इतने वर्ष पश्चात भी एक ही धारा मे बेलुड़ मठ की पूजा अनुष्ठित होती चली आ रही है। अथवा स्वामी जी जैसी कल्पना करते थे श्री श्री माँ सारदा देवी को 'जीवन्त दुर्गा' स्वरूप में, क्या प्रत्येक वर्ष मिट्टी की मूर्ति में उसी चिन्मयी माँ का अधिष्टान होता है ? हमलोग यह भी जानते हैं स्वामीजी आगमनी गाना अत्यंत ही पसन्द करते थे एवं स्वयं भी गाते थे। स्वयं श्री श्री रामकृष्ण देव भी स्वामी जी के कंठों से आगमनी गाना सुनकर समाधिस्थ हुए थे। बेलुड़ मठ में भी स्वामीजी प्रायः एक आगमनी गाना गाते थे अपने प्रिय बेल वृक्ष के नीचे बैठकर। वह गाना है :

"गिरी गणेश हमारे शुभकारी हैं,
पूजकर गणपति पाई हेमवती,
चन्द्रमा के माला स्वरूप चन्द्रहार।
वेल वृक्षतले आयोजन कर बोधन,
गणेश के कल्याण से मां गौरी का आगमन,
घर में लाऊँगा चंडी, कानों से सुनूंगा चंडी,
आयेंगे कितने दंडी जटा जूटधारी।"

कामना ही बंधन है

– साधुराम साधू

हमारे पास दस इंद्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। इन इंद्रियों के विषय हमें बंधन में नहीं डालते, पर इन विषयों के प्रति हमारी कामना, हमारी इच्छा हमें बंधन में डालती है। जैसे देखना या दृष्टि हमारी एक इंद्रिय है। तो दृश्य हमें बंधन में नहीं डालता, पर देखने की जो इच्छा है, जो कामना है, वह हमें बंधन में डालती है। दृश्य में जो हम उलझ जाते हैं, वह उलझाव हमें बंधन में डालता है। इसी तरह हर इंद्रिय के साथ है। इसी तरह भोजन बंधन में नहीं डालता। भोजन तो शरीर की आवश्यकता है, भोजन तो शरीर को पुष्ट बनाता है। पर भोजन के प्रति जो लालसा है, वह बंधन है। मुझे खाने में यह - यह पसंद है... यह जो पसंद है, यह बंधन में डालती है। ऐसा ही सब विषयों के साथ है। विषय नहीं, उनमें हमारी पकड़ बंधन में डालती है।

अगर विषय ही बंधन में डालते हैं, तो परमात्मा हमें विषय कभी भी न देता और यदि परमात्मा के दिए विषय ही बंधन का कारण होते, तो आदमी कभी भी इतना ताकतवर, इतना मजबूत न हो पाता कि परमात्मा तो विषयों में डाले और वह उनसे मुक्त हो जाए। तब तो उन विषयों से संघर्ष करके जीतना संभव न था। पर ऐसे लोग हुए हैं जो जीते हैं, जो विषय-वासनाओं से मुक्त हुए हैं। इसलिए विषय नहीं बाँधते, उनमें हमारी लालसा हमें बाती है। देखना नहीं बाँधता, देखने की प्यास बाँधती है। सुनना नहीं बाँधता, सुनने की आकांक्षा बाँधती है। और यह लालसा हमारे शरीर में नहीं है। शरीर छूट जाने पर भी लालसा नहीं छूटती, क्योंकि वह शरीर में थी ही नहीं। हमारी लालसा हमारे अन्तःकरण में है, शरीर में नहीं। यह जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से बना हमारा अन्तःकरण है, लालसा उसमें है, शरीर में नहीं। जिसे भोजन करना है, वह जीभ नहीं कहती कि मुझे खाने को यह-यह चाहिए, मन कहता है। जिसे वस्त्र पहनना है वह त्वचा नहीं कहती कि मुझे ऐसे वस्त्र चाहिए, मन कहता है। लालसा हमारे शरीर में नहीं, हमारे होने के ढंग में है, हमारे अस्तित्व में है। तभी तो शरीर की मृत्यु हो जाती है, देह यहीं छूट जाती है, पर हमारी लालसा हमें फिर से नई देह धारण करा देती है। हम फिर से दूसरे शरीर में जन्म ले लेते हैं। यदि लालसा भी छूट जाए, तो हम फिर से जन्म क्यों लें!

शरीर समाप्त हो जाता है, शरीर के विषय समाप्त हो जाते हैं, वे पदार्थ जिन्हें शरीर भोगता था, वे भी समाप्त हो जाते हैं, पर लालसा समाप्त नहीं होती। मृत्यु के बाद ही हमारी लालसा, हमारी वासना हमारे साथ जाती है। यही वासना हमें फिर से जन्म दिला देती है। तो शरीर से मुक्ति, मुक्ति नहीं, वासना से मुक्ति ही मुक्ति है। विषयों से मुक्ति, मुक्ति नहीं, लालसा से मुक्ति ही मुक्ति है। आप पूछ सकते हैं कि यह लालसा कैसे छूटेगी ? कि इसे छोड़ने के लिए क्या करें ? मैं कहूँगा कि यह लालसा पाने के लिए आपने क्या किया था। कौन सी साधना की थी, कौन सी विधि अपनाई थी, कौन सा अभ्यास किया था, कौन से आसन-प्राणायाम किए थे। यदि कोई नहीं तो लालसा छोड़ने के लिए भी किसी साधना की, किसी विधि की, किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं। समझ पर्याप्त है। निश्चय काफी है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती
जिन्होंने समाज को एक नयी विचारधारा दी

विष्णु प्रभाकर

विश्व का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जो इस वात के साक्षी हैं कि जिन देशों ने दासता से मुक्ति पायी है या किसी दूसरे रूप में राजनैतिक क्रान्ति की है, उन्होंने सवसे पहले सामाजिक शक्ति का संचय किया था। हमारे देश की स्वतन्त्रता के पीछे भी १९वीं शताब्दी में उभरे अनेक सुधार-आन्दोलनों की शक्ति थी।

जितने सुधार-आन्दोलन यहां हुए, उनका तत्कालीन कारण विदेशियों का इस देश में आगमन था। जैसा कि सदा होता है, विजेताओं के साथ उनकी सभ्यता और संस्कृति भी इस देश में आयी। शुरू-शुरू में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने हिन्दू धर्म पर खुले हमले किये। दोष चुन-चुन कर खिल्ली उड़ाना ही मानो उनका धर्म रह गया था। स्वाभाविक रूप से सुधार-आन्दोलनों के जन्म का एक कारण इस आक्रमण का प्रतिकार करना भी था। परन्तु यह भी सत्य है कि पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा ने हमें अपनी ओर आकर्पित किया। उनके सम्पर्क से इस देश में एक नयी चेतना पैदा हुई। उसी के परिणामस्वरूप राजा राम मोहन राय ने सन् १८२८ में व्राह्म समाज की स्थापना की और सती-प्रथा तथा वाल-हत्या जैसी वर्वर प्रथाओं को कानून द्वारा वन्द करवाने की चेष्टा की। आचार्य जावड़ेकर के शब्दों में, "हिन्दू धर्म में सुधार किये जायें, एकेश्वरी धर्म का सर्वत्र प्रचार करके यह बताया जाये कि सव धर्मों का अन्तरंग एक ही है। और इस तरह संसार के धर्म-भेदों का अन्धकार दूर करने वाले सार्वत्रिक विश्व धर्म के सूर्य का प्रकाश सर्वत्र फैलाना उनकी वड़ी महत्वाकांक्षा थी।"

वे ईसाई धर्म को हिन्दू धर्म से किसी प्रकार भी अच्छा नहीं मानते थे, परन्तु वे स्वीकार करते थे कि ईसाइयों में भी वहुत-से अच्छे लोग हैं। व्राह्म समाज से मिलते-जुलते और भी कई आन्दोलन इस देश में उभरे, परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज का सुधार-आन्दोलन उन सवमें सवसे अधिक व्यापक था। एक और बात में यह आन्दोलन सर्वथा मौलिक था। दूसरे आन्दोलन किसी-न-किसी रूप में पश्चिम से सीधे प्रभावित थे, परन्तु स्वामी दयानन्द संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और अंग्रेजी के प्रभाव-वृतसे सर्वथा असम्पृक्त थे, अतः पश्चिम का उन पर कोई सीधा प्रभाव नहीं था।

सच्चे शिव की तलाश में जव वे वर्फानी नदियों और हिंसक पशुओं से भरे सघन वन-प्रान्तों में भटक रहे थे, तभी उन्होंने मथुरा के दण्डीस्वामी विरजानन्द का नाम सुना। वे उनके पास आये। दण्डीस्वामी प्रज्ञाचक्षु थे, परन्तु दयानन्द की प्रतिभा को पहचानने में उनको कोई कठिनाई नहीं हुई। दयानन्द ने भी अपार श्रद्धा के साथ उनसे विद्या ग्रहण की। गुरु-दक्षिणा देने के लिए उनके पास कुछ नहीं था। कहीं से कुछ लौंग लेकर वे उनसे विदा मांगने आये। उस समय दण्डीस्वामी ने कहा, " दयानन्द, मुझे लौंग नहीं चाहिए, लेकिन जो कुछ चाहिए, वह भी तुम्हीं दे सकते हो। मैं चाहता हूं, देश के अज्ञान को दूर करो। कुरीतियों का निवारण करो। जिन ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषि-मुनियों की निन्दा है, उनको त्याग कर आर्ष ग्रन्थों का प्रचार करो। वैदिक ग्रन्थें के पठन पाठन में लोगों को लगाओ। गंगा-जमुना के प्रभाव की भांति लोक हित की भावना से क्रिया शील जीवन व्यतीत करो। यही मेरी गुरु-दक्षिणा है।"

गुरु का यह आदेश शिरोधार्य करके दयानन्द ने तत्कालीन भारत में फैले पाखण्ड, अविद्या, और अन्धविश्वासों पर प्रवल आक्रमण किया। उस समय हिन्दू धर्म अत्यन्त विकृत हो चुका था। सैकड़ों मत-मतान्तर चल रहे थे। असंख्य जातियां जन्म ले चुकी थीं। नारी, शुद्र और अछूत, ये मानो मनुष्य ही नहीं थे। हिन्दू धर्म मानो मात्र छूतछात, विद्वत्ता के दम्भ और ढोंग का धर्म रह गया था। इसके विपरीत इस्लाम और ईसाई धर्म नये थे। उनमें जीवन था, स्फूर्ति थी। वे इस जीर्ण-शीर्ण धर्मपर नवोन्मेष के साथ आक्रमण कर रहे थे।

गीता में योग

पं. श्री विष्णुकान्त शास्त्री
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

गीता में योग की तीन परिभाषाएं दी गई हैं। इनमें दो परिभाषाएं बहुत विख्यात हैं, जिन्हें अधिकतर लोग जानते हैं- 'समत्वं योग उच्यते' एवं 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् समत्व को योग कहते हैं तथा कर्म में कुशलता का नाम योग है। एक और परिभाषा है छठे अध्याय में जिसे कम लोग जानते हैं - तंविद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् अर्थात् दुःख के संयोग के वियोग का नाम योग है। आप देखिए यहां कहा गया है कि दुःख के संयोग के वियोग का नाम योग है, यह नहीं कहा गया है कि दुःख के वियोग का नाम योग है। इन तीनों परिभाषाओं का मर्मार्थ क्या है, इन परिभाषाओं की क्या महिमा है, इनका आंतरिक संबंध क्या है, इन विषयों की थोड़ी सी चर्चा मैं आपके सामने करूंगा। पहले इस बात पर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि गीता एक ही साथ उपनिषद् भी है और योगशास्त्र भी। गीता के किसी भी अध्याय की पुष्पिका को आप देखें तो उसमें इस तथ्य का उल्लेख पाएंगे। प्रथम अध्याय की पुष्पिका को ही देख लीजिए - ओं तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽ र्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः। इसी तरह सभी अध्यायों में किसी न किसी योग की विवेचना है और सब अध्यायों की 'पुष्पिका' में कहा गया है श्रीमद् भगवत् गीतासूपनिषत्सु ब्रहमविद्यायां। गीता उपनिषद् है। गीता ब्रह्म विद्या है। ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली विद्या है। किन्तु गीता केवल ब्रह्म का विवेचन ही नहीं करती। यह उपनिषद् होने के साथ-साथ योगशास्त्र भी है। गीता मनुष्य के जीवन का जो सर्वोच्च लक्ष्य है, 'ब्रह्मानुभूति,' उसका विवेचन भी करती है और उस ब्रह्मानुभूति को कराने की पद्धतियों का भी निरूपण करती है। उन रास्तों को भी गीता बताती है जिन पर चलकर ब्रह्मानुभूति की जा सकती है। इस बात पर ध्यान दीजिए कि ब्रह्मविद्या का शास्त्र पुराने आचार्यों के अनुसार मुख्यतः अरण्य का शास्त्र था। अरण्यों में रहकर जिस विद्या का बोध हो सकता था, अरण्यों में जिसका उपदेश दिया जाता था, भगवान ने उसका विवेचन रणभूमि में किया। अरण्य की विद्या को रणभूमि में उपस्थित करने में भगवान का क्या उद्देश्य रहा होगा ? उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ब्रह्मविद्या को और ब्रह्मानुभूति कराने वाले योगों को केवल अरण्य में नहीं समाज में, व्यवहार में प्रयुक्त होना चाहिए। इसीलिए गीता का योगशास्त्र योग दर्शन से बहुत कुछ समानता रखते हुए भी बहुत विशिष्ट है।

इस योगशास्त्र की व्याख्या करने के पूर्व योग की व्युत्पत्तियों पर कुछ विचार करना आवश्यक है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि गीता में योग का किन-किन अर्थों में प्रयोग किया गया है। योग की तीन व्युत्पत्तियां बताई गई हैं-युजिर् योगे, युज समाधौ, युज संयमने। यह सही है कि गीता में इन तीनों अर्थों में योग शब्द का प्रयोग हुआ है, लेकिन गीता में योग शब्द का प्रधान प्रयोग पहले अर्थ में हुआ है-युजिर् योगे। यहां 'योग' का अर्थ है संबंध जोड़ देना, संबंध बना देना, बांध देना, जोड़ देना। जो हमारे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है उसके साथ हमको जोड़ देना जिसके द्वारा संभव है, जिस मार्ग द्वारा हम उससे जुड़ सकते हैं, उसको यहां योग कहा गया है। और इसी अर्थ में गीता में सांख्ययोग (ज्ञान योग), कर्म योग, भक्ति योग, ध्यान योग आदि अनेक योगों की चर्चा की गई है। गीता में तो श्रीकृष्ण के प्रति निवेदित अर्जुन के विषाद को भी विषाद योग कह दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि आपका विषाद भी यदि प्रभु को सच्चे हृदय से समर्पित है, तो वह विषाद भी आपको भगवान से जोड़ सकता है। डंके की चोट पर गीता के प्रथम अध्याय की पुष्पिका में कहा गया है- अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः। हमारा आपका विषाद भी अगर सच्चे हृदय से प्रभु को समर्पित है तो वह भी हमको-आपको भगवान से जोड़ देगा इस वात का आश्वासन गीता देती है। फिर निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति, शरणागति आदि का तो कहना ही क्या। गीता के अनुसार इनमें से कोई भी साधन यदि सत्यनिष्ठापूर्वक किया जाए तो वह योग बन सकता है, हमें भगवान के साथ जोड़ सकता है। ''युज समाधौ''- इस अर्थ में भी योग का प्रयोग गीता में हुआ है। गीता कहती है 'उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये' आसन पर बैठकर योग के साथ अपने को जोड़ो जिससे कि हृदय की विशुद्धि हो। युज् संयमने के अर्थ में भी गीता में योग शब्द का प्रयोग हुआ। संयमन का यहां अर्थ है सामर्थ्य, शक्ति, प्रभाव आदि। प्रभु ने अर्जुन से कहा, 'पश्य में योगमैश्वरम्' अर्थात मेरे योग को देखो, तो वहां अपने सामर्थ्य को, अपनी योग शक्ति को देखने के लिए वे कह रहे हैं फिर भी समग्र दृष्टि से कहा जा सकता है कि पहला अर्थ 'युजिर योगे' ही गीता को सबसे अधिक अभीष्ट है क्योंकि सबसे अधिक बार इसी अर्थ में योग शब्द का प्रयोग गीता में किया गया है।

श्रीमाँ सारदा के अवतरण का युग - प्रयोजन

- स्वामी शशांकानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

पश्चात्य राष्ट्रों ने नारी को रमणी का रूप दिया है, कामिनी का रूप दिया है तथा नारी में केवल सौन्दर्य की ही पूजा की है, उसे मात्र भोग सामग्री ही समझा है। परन्तु, भारत में नारी के मातृत्व को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यहाँ, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, सीता के रूप में सदा ही नारी की पूजा हुई है, सावित्री, मदालसा और दयमन्ती को आदर्श माना गया है।

किन्तु कालचक्र में मानव एक ओर ईश्वर-विस्मृति को प्राप्त होकर इन्द्रियगम्य जगत को ही सत्य मानकर काम-कंचन परायण हुआ, तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में उसका अन्ध-अनुकरण करते हुए भारतीय नारी का ध्यानउसकी वेश-भूषा, साज-सज्जा की ओर झुकने लगा। वह रमणी और कामिनी का रूप धारण करने लगी और बाह्य सौन्दर्य के माध्यम से प्रतिष्ठित होने का प्रयास करने लगी। उसके हृदय में मातृभाव क्षीण होने लगा।

ऐसी विकल परिस्थिति में एक दरिद्र, ग्रामीण, अनपढ़ महिला के रूप में धन, वैभव, ऐश्वर्य आदि से रहित होकर इस धराधाम पर श्री श्री माँ सारदा देवी का आगमन मातृत्व की प्रतिष्ठा के लिए ही हुआ था।

युग-युग में भगवान् धर्मग्लानि को दूर करने, प्रकृत-धर्म की प्रतिष्ठा करने एवं साधुजनों के परित्राण के लिए विभिन्नरूप धारण करते हैं। वे ही श्रीराम, बुद्ध एवं चैतन्य के रूप में आए थे। इस बार वे ही श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के रूप में अवतरित हुए थे। जिस प्रकार श्रीराम के साथ माता जानकी एवं श्रीकृष्ण के साथ श्री राधिका उनके अवतार कार्य में सहायता करने के लिए आई थीं, इस बार वही जगज्जननी श्री श्री माँ सारदा देवी के रूप में युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के युग-प्रयोजन को पूरा करने के लिए आई थीं। जिस प्रकार से सती या पार्वती के रूप में वे भगवान शंकर से विवाह के लिए तप करती रहीं और जानती थीं कि भगवान शिव ही उनके जन्म जन्मान्तर के पति हैं, उसी प्रकार श्री श्री माँ को भी ४ वर्ष की उम्र से ही यह ज्ञान था कि वे श्रीरामकृष्ण देव के लिए चिह्नित हैं। श्रीरामकृष्ण को भी यह स्पष्ट था कि माँ सारदा उन्हीं के कार्य में सहायता करने के लिए आई हैं।

शिहड़ ग्राम में एक गाने की मजलिस में एक महिला की गोदी में बैठी छोटी सारदा से जब उस महिला ने पूछा "इनमें से तू किसके साथ विवाह करना चाहती है," तब दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया था उन्होंने। बाद में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में वायुरोगग्रस्त व्यक्ति के समान व्यवहार करने की बात सुनकर माँ चन्द्रामणि ने श्रीरामकृष्ण को कामारपुकुर बुला लिया और उनकी सांसारिक उदासीनता दूर करने के लिए विवाह बन्धन मे बाँधने की असफल चेष्टा की। तब श्रीरामकृष्ण ने भी सरल भाव से आनन्द और उत्साह प्रकट करते हुएं कहा था, "जयरामबाटी के श्रीरामचन्द्र मुखर्जी के घर जकार देखो कि कन्या मेरे लिए चिह्नित कर रखी गई है।"

यह विवाह लोक कल्याणार्थ ही हुआ था, सांसारिक जीवन के लिए नहीं। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने कहा, "जगन्माता ने मुझे दिखा दिया है कि वह प्रत्येक स्त्री में निवास करती हैं और इसलिए मैं हर स्त्री को माँ के रूप में देखता हूँ। परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा मुझे संसार में खींचने की हो, क्योंकि तुमसे मेरा विवाह हो चुका है, तो मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हूँ।" श्री माँ ने तुरन्त उत्तर दिया, "आपको सांसारिक जीवन में घसीटने की मेरी इच्छा कदापि नहीं है। बस इतना चाहती हूँ कि मैं आपके समीप रहूँ, आपकी सेवा करूँ तथा आपसे शिक्षा ग्रहण करूँ। मैं तो इष्टपथ में सहायता करने आयी हूँ।" काशीपुर में एक दिन श्रीरामकृष्ण श्री माँ की ओर टकटकी लगाये हैं, यह देखकर श्री माँ ने कहा, "क्या कहोगे? कह दो।" श्रीरामकृष्ण ने शिकायत के स्वर में कहा, "तुम कुछ भी नहीं करोगी, (अपनी ओर इशारा करके) यही सब करेगा?" श्री माँ ने अपनी असमर्थता की बात सोचते हुए कहा, "मैं तो औरत

हूँ, मैं क्या कर सकती हूँ?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया: नहीं, नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। फिर एक दिन श्रीरामकृष्ण आँख बंद किये लेटे थे। श्री माँ ने जब उन्हें भोजन के लिये पुकारा तब श्रीरामकृष्ण मानो किसी दूसरे प्रदेश से आकर भाव के नशे में श्री माँ की ओर दृष्टिपात करते हुए बोले, "देखो, कलकत्ता के लोग मानो अंधेरे में कीड़ों की तरह कुलबुला रहे हैं। तुम उनको देखना।" श्री माँ ने करुण स्वर में कहा, "मैं तो स्त्री हूँ, यह कैसे होगा ?" श्रीरामकृष्ण अपने शरीर की ओर इंगित कर अपने ही भाव में कहते चले, "आखिर इसने किया ही क्या है? तुम्हें इससे बहुत ज्यादा करना होगा।" फिर कभी कहते: "क्या सिर्फ मेरी जिम्मेदारी है? तुम्हारी भी है।" माँ जानती थीं कि श्रीरामकृष्ण के पार्थिव शरीर छोड़ने के बाद ही उनका कार्य आरम्भ होगा। इसीलिए उन्होंने कहा, "वह जब होगा, तब होगा। तुम इस समय भोजन तो करो।" श्रीरामकृष्ण की भाँति ही उन्होंने भी दरिद्रता, निरक्षरता का आधार लेकर अति साधारण एवं सरलरूप धारण किया। आधुनिक चमक दमक से दूर अत्यंत साधारण ग्राम्य परिवेश में जन्म लिया। क्योंकि इस बार अस्त्र बाहुल्य, सिंह गर्जन समर कोलाहल की आवश्यकता नहीं थी बल्कि लज्जा, विनय, सदाचार, पवित्रता, कल्याण कामना, मातृत्व, सर्वजीवों के प्रति प्रेम और ईश्वरानुभूति इन गुणों के चमत्कार द्वारा मानवमन को असत् से हटाकर सत्पथ पर ले जाने की आवश्यकता थी उनके मनों को जीतने की आवश्यकता थी, आकर्षित करने की आवश्यकता थी।

श्री माँ सारदा देवी को आज जगत में कौन नहीं जानता? सारे विश्व में आज उनकी पूजा वन्दना होती है। इसलिए नहीं कि वे युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी हैं, बल्कि इसलिए कि वे स्वयं जगदम्बा भगवती हैं। विख्यात नाटककार श्री गिरीश चन्द्र घोष ने श्री माँ से पूछा था, "तुम कैसी माँ हो?" उन्होंने कहा था कि "मैं सच्ची माँ हूँ। गुरु पत्नी नहीं, मुहँ बोली माँ नहीं, सत्य जननी हूँ।" एक महिला ने श्री माँ से पूछा, "माँ आप जो भगवती हैं, हम सब यह क्यों नहीं समझ पातीं? माँ ने कहा, "सभी क्या पहचान सकते हैं बेटी? कहीं घाट पर एक टुकड़ा हीरा पड़ा था। सभी उसे पत्थर समझ कर उस पर पैर घिसकर स्नान करके चले जाते। एक दिन एक जौहरी ने उस घाट पर आकर पहचाना कि वह एक बड़ा भारी बहुमूल्य हीरा है।"

श्री माँ की इस उक्ति से आइये हम जानने की चेष्टा करें श्री श्री सारदा देवी कौन थीं? कुछ इने गिने जौहरी ही श्री माँ रूपी हीरे को पहचान पाए थे। भानुबुआ ने उन्हें पार्वती के रूप में, गाँववालों ने एक जगद्धात्री के रूप में, तेलोभेलों के डाकू ने एवं उनके भतीजे शिबूदादा ने माँ काली के रूप में और विष्णुपुर के एक कुली ने माँ जानकी के रूप में उन्हें पहचाना था। जितने जौहरी इस हीरे को पहचान पाये हैं उनमें सबसे अग्रगण्य हैं स्वयं भगवान श्रीरामकृष्ण देव। उन्होंने गोलाप माँ से कहा, "वह (श्री माँ) सारदा सरस्वती हैं। ज्ञान देने के लिए आई हैं।" अन्यत्र उन्होंने कहा, "वह ज्ञानदायिनी, महा बुद्धिमती है। वह क्या ऐसी वैसी है? वह मेरी शक्ति है।" आधुनिक शिक्षा और वंशाभिमान आदि से रहित, सरला श्री माँ को पहचानना आसान नहीं है। इसी से श्रीरामकृष्ण स्वयं उनका स्वरूप प्रकट करने के लिए अग्रसर हुए थे। वह जानते थे कि भोगैश्वर्यपूर्ण वर्तमान युग में शुद्धसत्व और पवित्रता से परिपूर्ण इस चरित्र को पूरी तरह समझना हमारी शक्ति से बाहर है, इसी से श्री माँ के सम्बध में श्रीरामकृष्ण हँसी में कहते थे, "राख से ढकी हुई बिल्ली है।" जैसे राख से ढकी बिल्ली शीघ्र लोगों की दृष्टि में नहीं आती, वैसे ही श्री माँ साधारण मनुष्य की समझ में नहीं आतीं। वे इस बार इस प्रकार रूप छुपाकर क्यो आईं? इस सम्बंध में श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "सौन्दर्य रहने पर उसे अशुद्ध भाव से देखने के कारण कहीं लोगों का अमंगल न हो जाय, इसी से इस बार रूप छिपाकर आई है।"

श्रीरामकृष्ण को अवताररूप में प्रचार करने वाले महान नाट्यकार श्री गिरीश चन्द्र घोष ने एक दिन भक्तों से कहा था, "भगवान ठीक हमलोगों की तरह मनुष्य होकर जन्म लेते हैं- यह विश्वास करना मनुष्य के लिए कठिन है। तुम लोग कभी सोच सकते हो कि तुम्हारे सामने ग्राम्यबाला के वेष में जगदम्बा खड़ी हैं? तुम सब क्या कभी कल्पना भी कर सकते हो कि महामायी एक साधारण औरत की तरह घर-बार और सारे काम-काज संभाल रही हैं? पर वे ही जगज्जननी महामाया, महाशक्ति हैं। समस्त जीवों की

मुक्ति के लिए तथा मातृत्व का आदर्श स्थापित करने के लिए आविर्भूता हुई हैं।"

इस बार महामाया महाशक्ति भगवती का आगमन अत्यंत साधारण नारी के रूप में हुआ। न तो सिंह की सवारी थी, न ही त्रिशूल, चक्र इत्यादि। इसका कारण है इस युग का प्रयोजन। वर्त्तमान युग में एक महिषासुर या चण्ड-मुण्ड की समस्या न थी। आज की समस्या तो मानव मन में व्यापक रूप से बसे हुए असंख्य महिषासुर हैं। इस युग में तो मन परिवर्तन ही एकमात्र साधन है, महिषासुर का वध नहीं। इस बार अस्त्र बाहुल्य, सिंह गर्जन, समर कोलाहल की आवश्यकता न थी बल्कि आवश्यकता थी लज्जा, विनय, सदाचार, पवित्रता, कल्याण-कामना, मातृत्व, सर्वजीवों के प्रति प्रेम, सहानुभूति एवं ईश्वरानुभूति की। इन गुणों के चमत्कार द्वारा मानव मन को असत् से हटाकर सत्पथ पर ले जाने की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही श्री श्री माँ सारदा देवी ने अपनी इस जीवन-लीला को सजाया था।

कर्मव्यस्तता में निष्क्रियता, हजारों झंझटों में ईश्वर स्मरण, साधारण एवं सरल जीवन में देवत्व का प्रकाश, इन सब विपरीत परिस्थितियों का समन्वय स्वरूप थीं माँ सारदा सांसारिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन बनाने की कला ही इस युग का प्रयोजन थी और श्री श्री माँ ने अपने जीवन में इसे कर दिखाया।

अल्पायु में ही हम उन्हें एक ओर अपनी जननी के गृहकार्यों में अत्यंत व्यस्त देखते हैं तो दूसरी ओर पूजा-पाठ और गंभीर ध्यानस्थ भी। रुंई चुनना, रुई से जनेऊ बनाना, छोटे भाइयों की देखभाल करना, पशुओं के लिए घास काटना, खेतों में काम करते हुए मजदूरों के लिए भुरभुरे ले जाना, रसोई बनाना यहाँ तक कि तालाब से जल ले आना इत्यादि गृह-कार्यों के बीच हम उन्हें लक्ष्मी, माँ काली आदि की मूर्ति बनाकर पूजा करते हुए भी देखते हैं।

विवाह के उपरान्त कामारपुकुर में माँ ने तैरना, गाना और खाना पकाना आदि अच्छी तरह सीख लिया था, इधर श्रीरामकृष्ण भी उन्हें अनेक भाँति की शिक्षा देने में प्रवृत्त हुए। एक ओर जैसे ही उन्होंने अपने त्यागमय जीवन का ज्वलंत आदर्श श्री माँ के सम्मुख रखा और उन्हें उच्च आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति के लिए उपयोगी चरित्र गठन की शिक्षा दी, वैसे ही दूसरी ओर गृहस्थी के नित्यकर्म, देव-द्विज-अतिथि सेवा, गुरुजनों पर श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह, परिवार की सेवा में आत्मसमर्पण आदि अनेक विषयों पर उनको उपदेश दिया।

इस आभास को श्री श्री माँ ने अपने समस्त जीवन में अक्षुण्ण रखा था। दक्षिणेश्वर के नहबत खाने में, श्यामपुकुर एवं काशीपुर उद्यानबाटी में जहाँ-जहाँ भी वे रहीं समस्त दिन वे व्यस्त रहती थीं। श्रीरामकृष्ण के पास आने वाले भक्तों और भक्त-महिलाओं के खाने और सोने की व्यवस्था, श्रीरामकृष्ण देव की देखभाल एवं श्रीरामकृष्ण देव की माँ चन्द्रामणि देवी की सेवा में वे अक्लांत परिश्रम करती थीं। किन्तु उनकी व्यस्तता साधारण जीवों की व्यस्तता से भिन्न थी। साधारण जीव अपने आप को लेकर उलझा हुआ कोल्हू के बैल की तरह पिसता रहता है, किन्तु देव-मानव का सम्पूर्ण जीवन परमार्थ के लिए होता है। श्री श्री माँ की व्यस्तता मानव कल्याण के निमित्त जीवों के प्रति वात्सल्य भाव से पूर्ण निष्काम कर्म की ही परिचायक थी।

अपनी जीवन संध्या में भी श्री माँ सारदा देवी को जयरामबाटी में अपनी शिष्यों और भक्तों की सेवा में देखा गया है। कभी वे अनाथा राधू और पगली भाभी की सेवा करतीं तो कभी भाइयों के झगड़े मिटाने का प्रयास। इन्हीं सब कार्यक्रमों को देखकर एक बार श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी प्रेमानन्दजी ने स्वामी केशवानन्दजी से कहा था, "तुम लोग देख ही आये कि किस प्रकार राज-राजेश्वरी माँ स्वेच्छा से घर पोत रही हैं, बरतन माँज रही हैं, चावल झाड़ रही हैं। वे जो इतना कष्ट करती हैं, वह केवल गृही लोगों को गृहस्थ धर्म सिखाने के लिए करती हैं।"

माँ का आध्यात्मिक जीवन

श्री माँ काम-काज में व्यस्त रहते हुए भी नित्य एक लाख जप करती थीं, ध्यान और प्रार्थना भी करती थीं। वे स्वयं कहा करती थीं, "परिश्रम करना चाहिए। बिना परिश्रम के क्या कुछ होता है? सांसारिक कार्यों के बीच कुछ समय निकलना चाहिए। अरी, मैं क्या बताऊँ। दक्षिणेश्वर में उस समय रात के तीन बजे उठकर जप करने बैठ जाती थी।" रात्रि में गंगा में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को देखकर माँ

प्रार्थना करतीं, "चन्द्रमा में भी कलंक है, पर मेरे मन में कोई दाग न रहे।"

सर्वभूतों में ईश्वर दृष्टि

श्री माँ ने श्रीरामकृष्ण के साथ आठ मास तक एक ही खाट पर शयन किया। उस समय जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण का मन उर्ध्वलोक में विचरण करता था, उसी प्रकार श्री माँ का मन भी इन आराध्यदेव के ध्यान में ही मग्न रहता था। दोनों ही पवित्रता की मूर्ति थे।

इस पवित्रता स्वरूपिणी को श्रीरामकृष्ण अपनी लीला को पूरा करने के लिए बाद में रख जाएँगे। इसलिए उन्हें अपनी शक्ति के बारे में सचेतन कराने के लिए श्री माँ की षोडशोपचार विधि से पूजा की। श्री माँ भी भाव जगत् में स्थिर होकर श्रीरामकृष्ण की पूजा तथा उनकी साधना की समस्त सिद्धियों की अधिकारिणी हुईं। इसके सिवा व्यावहारिक दृष्टि में भी उन्होंने सभी जीवों में ब्रह्म बुद्धि रखना सीखा। श्री पूर्ण के दक्षिणेश्वर आने पर श्रीरामकृष्ण ने उन्हें भोजन करने के लिए नौबतखाने में भेज दिया। उनके अभिप्राय के अनुसार भी माँ ने उस दिन पूर्ण को माला चन्दन से सजाया और प्यार से निकट बैठाकर विविध व्यंजनों से भोजन कराया। तदुपरान्त आचमन के लिए उनके हाथ पर जल भी डाला। श्रीरामकृष्ण बीच-बीच में नौबतखाने की बगल में आकर श्री माँ को यह बताते रहे कि किस तरह क्या करना चाहिए और उससे भी तृप्त न होकर अपने कमरे की ओर जाते-जाते लौटकर नये-नये निर्देश दे रहे थे। उस दिन श्री माँ ने शायद मातृत्व की परिपूर्ति के साथ ही बालक नारायण की पूजा भी सीखी। हरिद्वार जाते समय रेलगाड़ी में योगिन महाराज को वहुत ज्वर हुआ। माँ जब उन्हें अनार का दाना खिला रही थीं, तब श्री माँ ने देखा जैसे श्रीरामकृष्ण को ही खिलाया जा रहा है।

श्री माँ को एक वार विलक्षण अनुभूति हुई थी। उन्होंने देखा था कि श्रीरामकृष्ण ही सब कुछ हो रहे हैं - अंधे, लंगड़े, सभी वे ही हैं, जीवों के कष्ट से उनका कष्ट है, इसीलिए श्री माँ को भी कष्ट निवारण में प्रवृत होना पड़ता है। यह अनुभूति ही श्री माँ के कोमल हृदय में करुणा का भाव जागृत करती रहती थी। तब उनकी निद्रा, विश्राम सव कहाँ जाते थे, वे सब कुछ छोड़कर उनके कष्ट निवारण में लग जाती थीं और एकमात्र जीवों का कल्याण-चिन्तन ही उनका एकमात्र कर्तव्य रहता।

एक दिन स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी ने पूछा " आप हम लोगों को किस तरह देखतीं हैं?" माँ ने उत्तर दिया, "नारायण के रूप में।' फिर प्रश्न हुआ, "हम सव आपकी संतान हैं। नारायण भाव से देखने पर तो संतान-भाव से देखना नहीं होता है।" इसके उत्तर में माँ ने कहा, "नारायण के रूप में भी देखती हूँ और संतान के रूप में भी देखती हूँ।"

और एक दिन सुधीरा देवी से उन्होंने कहा था, "मेरी एक बार ऐसी अवस्था हो गयी थी कि नैवेद्य से चींटियों को नहीं भगा सकती थी, ऐसा जान पड़ता था कि ठाकुर ही खा रहे हों।" इतना ही नहीं, उन्होंने एक दिन ज्ञान महाराज से कहा, "देखो, ज्ञान बिल्लियों को मारना नहीं। उनमें भी तो मैं ही हूँ।"

दक्षिणेश्वर के नौबतखाने की कोठरी और श्यामपुकुर के बैठकखाने में श्री माँ की पति सेवा तथा भक्तों के लिए खाने आदि की व्यवस्था एक बड़ी भारी तपस्या थी। लेकिन माँ ने इन तपस्याओं से भी संतुष्ट न होकर श्रीरामकृष्ण की भाँति अपने सारे जीवन को एक अविराम साधना बना डाला था। ध्यानाभ्यास के कारण श्री माँ का स्वाभाविक अन्तर्मुखी मन पहली अवस्था में ही सम्पूर्ण तन्मय हो जाता था। माँ कहती थीं, "परिश्रम करना चाहिये; बिना परिश्रम के क्या कुछ होता है? सांसारिक कार्यों के बीच भी कुछ समय निकालना चाहिए। अरी मैं क्या बताऊँ? दक्षिणेश्वर में उस समय रात के तीन बजे उठकर जप करने बैठ जाती थी। माँ का ध्यान कभी-कभी खूब जम जाता था एवं भाव समाधि भी होती थी। योगीन माँ ने देखा कि माँ अभी खूब हँस रही हैं, फिर थोड़ी देर में रो रही हैं। दोनों आँखों से अविरल आँसू बह रहा है। कुछ समय तक ऐसी अवस्था में रहकर वे धीरे-धीरे एक दम स्थिर-पूर्ण समाधिस्थ हो गई। एक रात्रि को कोई वंशी बजा रहा था। वंशी की आवाज सुनकर माँ को भाव हुआ। वे रह रहकर हँसने लगीं।

एक दिन संध्या के पश्चात् श्री माँ अपनी दोनों सहचरियों के साथ छत पर बैठी ध्यान कर रही थीं। योगिन माँ ने अपना ध्यान समाप्त होने पर देखा कि श्री माँ तब

भी बैठी हैं - निस्पंद, समाधिस्थ। बहुत देर बाद आधे होश में आकर वे कहने लगीं, "अरी योगीन, मेरे हाथ कहाँ हैं, पैर कहाँ हैं? दोनों सहचारियाँ उनके हाथों और पैरों को दबाकर दिखाती हुई कहने लगीं, ये तुम्हारे हाथ हैं, ये तुम्हारे पैर हैं। फिर भी देह बोध होने में काफी देर लगी।

सैकड़ों झंझटपूर्ण प्रतिकूल सांसारिक वातावरण में किस प्रकार आत्मस्थ होकर दिव्य जीवन का अलौकिक आनन्द लिया जा सकता है, इस प्रयुक्ति की आज घर-घर में आवश्यकता है। श्री श्री माँ ने अपने दिव्य जीवन के आलोक में यह प्रयुक्ति संसार के सामने रख दी। जिन परिस्थितियों में साधारण मनुष्य संतुलन खो बैठता है, सांसारिक दृष्टि से जो घटनाएँ उद्वेगजनक एवं क्लेशदायक हैं, उन घटनाओं से ओत-प्रोत जीवन में भी माँ सब समय श्रीरामकृष्णमय जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनके आचार-विचार दिव्य ज्ञान से प्रज्ज्वलित थे। उस स्थिति में वे संसार दावालन से तप्त असंख्य शिष्यों और भक्तों के लिए शान्ति का स्रोत बनी हुई थीं। वे अनन्त प्रेम और करुणा बरसाती हुई सब जीवों के हृदयों को मातृ-स्नेह से सिंचित करती रहीं।

नारी हृदय में बहुधा मातृत्व की भावना अपनी संतान में ही होती है। कहीं-कहीं वह भावना विकास पाकर अपनी संतानों के साथ-साथ पास-पड़ोस के बच्चों के प्रति भी प्रवाहित होती है। कुछ बिरले नारी हृदय में देह-सम्बंध रहित मातृ-प्रेम गुरु शक्ति के रूप में प्रकट होता है। किन्तु माता सारदा देवी के हृदय में मातृत्व ने एक अलौकिक रूप धारण किया था। वह था जगन्माता या जगदम्बा का रूप। जन्म देने वाली माँ तो एक जन्म की माँ होती है पर वे जन्म-जन्मान्तर की माँ हैं। वे मनुष्य जाति की माँ थीं, बूढ़े-बच्चे नर-नारी सभी की माँ थीं, सत्पुरुषों और असत्पुरुषों को समान संतान के रूप में देखती थीं। वे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सभी की माँ थीं। वे देशवासी-विदेशवासी सभी की माँ थीं। गाय, बिल्ली अन्य पशु और पक्षियों की माँ थी। यहाँ तक झाडू जैसी निर्जीव वस्तु को भी उनका स्नेह प्राप्त था। 'माँ' शब्द सुनकर माँ से और न रहा जाता था। वे संतान की मनोकामना पूर्ण करती थीं। एक बार श्रीयुत यतीन मित्र का कीर्तन सुनते-सुनते माँ को भाव समाधि हुई थी। किसी तरह माँ को उस अवस्था में उद्बोधन (बाग बाजार) लाया गया वहाँ ठाकुर घर में माँ निष्पंद भाव से खड़ी रहीं। पलकें भी न गिरती थीं। उस रात उनका मन किसी प्रकार से भी बाह्य-भूमि पर नहीं उतर रहा था। तब सब भक्तों ने परामर्श किया कि उन्हें 'माँ' कहकर पुकारना चाहिए क्योंकि संतान के कल्याण हेतु अवतीर्ण जगज्जननी संतान की पुकार अवश्य सुनेंगी। ऐसा ही हुआ। 'माँ' शब्द सुनकर श्री माँ की देह में स्पन्दन देखा गया और उन्होंने कहा, "क्यों बेटा?" जगज्जननी माँ सारदादेवीके जगन्मात्र की यह पराकाष्ठा आज भारतीय नारी के लिए युग-प्रयोजन है। आज कितने बालक जो दास-दासियों द्वारा पालित हो रहे हैं और उनकी माँ को फुरसत ही नहीं कि अपने बच्चे को बेटा या बेटी कहकर उसका लालन-पालन करें। परिणाम स्वरूप माँ और बेटे का सम्बंध दूर होता जा रहा है। माँ की ममता और माता के प्रति बच्चों का प्रेम इस सीमा तक दूर हो गया है कि मानव हृदय की स्निग्धता समाप्त होती जा रही है। वह पाषाण हृदय और मशीन की तरह हृदय हीन होता जा रहा है। मातृ प्रेम से वंचित बालक बड़ा होकर प्रतिक्रियाओं का शिकार होता जा रहा है। प्रेम, करुणा, ममता, दया आदि का प्रदर्शन करके श्री माँ सारदा देवी ने मातृत्व का आदर्श हमारी माताओं के सामने रखा। यही आदर्श हमारे देश की नारियों को हमारी जातीय संस्कृति में हीं बाँधकर रख सकता है। यही आदर्श है जो भारतीय नारियों को मातृरूप में प्रतिष्ठित रख सकेगा।

केवल माता ही है जो मानव को अपने प्रेम द्वारा उसके हृदय को कोमल, दयालु, कृपालु और सहानुभूति के पथ पर ले जा सकती है। माता ही मानव के मन को उदार और विशाल बना सकती है। अतः प्रत्येक नारी को मातृरूप में प्रतिष्ठित रहने से ही समाज पवित्र, उदार, सहनशील, सहानुभूति, प्रेम और सहायता से परिपूर्ण हो सकता है। उसकी प्रतिष्ठा के लिए श्री माँ का अवतरण हुआ था।

तुम सदैव यह बात स्मरण रखो कि तुम्हारा प्रत्येक विचार, प्रत्येक कार्य संचित रहेगा; और यह भी याद रखो कि जिस प्रकार तुम्हारे बुरे विचार और गलत कार्य तुम पर शेरों की तरह टूट पड़ने की ताक में हैं, उसी प्रकार तुम्हारे भले विचार और भले कार्य भी हजारों देवताओं की शक्ति लेकर सर्वदा तुम्हारी रक्षा के लिए तैयार हैं।

- स्वामी विवेकानन्द

जूठी चिलम

- रामधारी सिंह दिनकर

(जल स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते हुए एक वार वृन्दावन के पास पहुँचे थे जब उनके समक्ष प्रचंड भूख की प्रवल समस्या आ खड़ी हुई थी। उस समय उनके जीवन में एक वड़ी विलक्षण घटना घटित हुई थी। उसे ही राष्ट्रकवि दिनकर ने अपने प्रस्तुत काव्य में रोचक ढंग से अभिव्यक्त किया है। - सं०)

शिष्यों को कर शोकमग्न हो गये व्रह्मलीन
रामकृष्ण जो परम धर्म की मूर्ति, स्नेह के स्वर थे।
कुछ विषाद, कुछ वेचैनी, घवराहट से हो दीन
निकल पड़े सव शिष्य, साधना के निमित्त घर घर से।।

उन शिष्यों के मुकुट वीरवर सन्त विवेकानन्द
नगर, ग्राम, वन, विजन, सभी स्थानों में घूम रहे थे।
प्रथम देश-दर्शन से पा प्रेरणा और आनन्द
देश भक्ति के भावों से पूरित हो झूम रहे थे।।

चलते चलते एक दिवस देखा कि खेत के पास
एक व्यक्ति ले चिलम मस्त होकर दम खींच रहा है,
फैलाता तम्वाकू का सव ओर महकता वास,
घोंट रहा है धुआँ मग्न, कुछ आँखें मींच रहा है।

स्वामीजी ने कहा विलमकर - "भला करें भगवान।
जो सुख लूट रहे, वह क्या मुझको भी पाने दोगे?
तम्वाकू की खुशवू से मेरी भी है पहचान।
वन्धु, एक दम इस सुलफे से मुझे लगाने दोगे?

तम्वाकू पीने वाले ने कहा - "हाय, महराज'.
पाप कमाकर भला जगत् में हम किस भाँति जिएँगे?
आप साधु हैं, लेकिन मेहतर कहता मुझे समाज।
किस प्रकार फिर आप हमारी जूठी चिलम पिएँगे?"

यह उत्तर सुनकर आगे वढ़ गये विवेकानन्द।
पर तुरन्त लौटे अन्तर में गाँस कहीं पर खाकर।
"मूढ़ अभी तक भी वाकी है जात-पाँत का द्वन्द्व?
तू कायथ ही रहा शिखा कटवाकर, सूत्र जलाकर?"

चिलम छीनकर पी ली स्वामीजी ने आँखें मूँद।
खड़ा देखता रहा ठगा-सा वह मेहतर वेचारा।
टपकी दृग से उमड़ मौन आनन्द-जलधि की वूँद।
स्वामीजी ने और जोर से सुलफे में दम मारा।।

✦✦✦✦✦✦✦

महावीर की अहिंसा

- डा. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

भगवान् महावीर का समग्र जीवन-दर्शन या जीवन-संस्कृति मुख्यतया अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की त्रयी पर आधृत है। दृष्टि-निपुणता तथा सभी प्राणियों के प्रति संयम ही अहिंसा है। दृष्टि-निपुणता का अर्थ है सतत जागरूकता तथा संयम का अर्थ है मन, वाणी और शरीर की विलोम क्रियाओं का नियमन। जीवन के स्तर पर जागरूकता का अर्थ तभी साकार होता है, जब उसकी परिणति संयम में हो। संयम का लक्ष्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब उसका जागरूकता से सतत दिशा-निर्देश होता रहे। लक्ष्यहीन और दिग्भ्रष्ट संयम अर्थहीन कायक्लेशमात्र बनकर रह जाता है। समाजगत शुचि और अशुचि की अवधारणा के मूल में यही संयम या नियम ब्राह्मण अर्थ में समाविष्ट है।

किंतु, यहां स्मरणीय है कि ब्राह्मण संस्कृति के संयम-नियम या नेम-धरम से श्रमण संस्कृति का संयम आजकल प्रायः विलास-वैभव या व्यक्तिगत आभिजात्य के अभिमान की भावना से उत्पन्न शुचि-अशुचि की अवधारणा में वदल गया है। इससे समाज में गरीव-अमीर, ऊंच-नीच ओर स्पृश्यास्पृश्य, यानी छूत-अछूत जैसे हिंसावादी या अलगाववादी वर्गभेद को परिपोषण मिल रहा है। किंतु भगवान महावीर की श्रमण-संस्कृति के संदर्भ में ज्ञानदृष्टि के आधार पर जीवन-चर्चा का संयमन ही तात्विक संयमन है।

महावीर ने अपने अहिंसा सिद्धांत द्वारा संपूर्ण मानव-समाज को एकता का संदेश दिया। उन्होंने कहा जन्म से कोई किसी जाति का नहीं होता, कर्म से उसकी जाति का निर्धारण होता है (उत्तराध्ययन सूत्र)। अर्थात् कर्म की शुचिता और अशुचिता के आधार पर ही किसी मनुष्य की उच्चता और नीचता निर्भर होती है। प्रत्येक प्राणी, चाहे वह छोटा-सा कीड़ा ही क्यों न हो, आत्मसत्ता के स्तर पर समान है। उसमें अंतर्निहित संभावनाएं समान हैं।

महावीर के अपरिग्रह तथा अहिंसा का सिद्धांत आर्थिक विकास और वर्त्तमान समाज की आकांक्षाओं को ऊपर उठाने में अधिकाधिक साधक सिद्ध हो सकता है। किसी के जीवनाधिकार का अतिक्रमण न करना अहिंसा है। जीवन का अधिकार जीवन के तीन प्रमुख साधनों-भोजन, वस्त्र और आवास की समस्याओं से सम्पृक्त है। इन साधनों के विना जीवन की सत्ता कायम नहीं रह सकती। इसलिए महावीर की दृष्टि में तात्कालिक प्रात्यहिक आवश्यकता से अधिक संग्रह करना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि इससे दूसरे लोग वंचित होते हैं।

जीवन का अतिक्रमण अर्थ के स्तर पर ही नहीं, भावना और विचार के स्तर पर भी होता है। अपने विचारों को दूसरों पर वलात् लादकर उन्हें तदनुकूल चलने के लिए बाध्य करना भयावह हिंसा है। है तो यह भावहिंसा, किंतु इसका दुष्प्रभाव द्रव्यहिंसा से भी अधिक तीव्र होता है और भावहिंसाही अन्ततोगत्वा द्रव्यहिंसा में वदल जाती है। विशेषतया धर्म के नाम पर इस प्रकार की हिंसा वहुधा होती रहती है। अहिंसा अपरिग्रह, और अनेकान्त की त्रयी में अहिंसा सुमेरु की तरह प्रतिष्ठित है। महावीर का संपूर्ण चिन्तन मूलतः अहिंसा की धुरी पर ही घूमता है। महावीर द्वारा प्रवर्तित जैनधर्म-दर्शन का सीधा संबंध अहिंसा की व्यापक लोक-प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है और जिसका एकमात्र उद्देश्य अहिंसामूलक सामाजिक क्रांति से संवद्ध है।

अहिंसा जैनधर्म की आधारशिला है। जैन चिंतकों ने अहिंसा का सामाजिक उत्कर्ष के संदर्भ में जितनी गंभीर सूक्ष्मेक्षिका से विचार और विश्लेषण किया है, उतनी सूक्ष्म दृष्टि से किसी अन्य सम्प्रदाय के विचारकों ने कदाचित् ही चिंतन किया हो। महावीर की अहिंसा का क्षेत्र वड़ा व्यापक है। वह अहिंसा केवल जैनों के धर्म तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसका चिंतन समग्र भारतीय समाज के जन-जीवन को दृष्टि में रखकर किया गया है। इस प्रकार जैन धर्म वस्तुतः जनधर्म है। भगवान महावीर के अहिंसा-तत्व के विवेचन में समाजवादी समाज-रचना के अनिवार्य तत्व किसी न किसी रूप में अन्तर्निहित हैं। उन्होंने अपने अहिंसा-सिद्धांत के तात्विक चिंतन द्वारा सामाजिक क्रांति का युगान्तरकारी शंखनाद किया है। आज के समसामयिक जीवन में असुरक्षाबोध और अस्तित्व के संकट जैसी समस्याओं के समाधान के लिए महावीर के अहिंसामूलक तत्त्व-चिंतन का उपयोग प्रभावकारी ढंग से किये जाने की आवश्यकता है। सम्प्रति, अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर परस्पर आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ में मानवजीवन की परिस्थितियां जटिल से जटिलतर और भयावह होती जा रही हैं। मानव को मानव से भय हो गया है। वह एक दूसरे के विनाश के लिए अस्त्र-शस्त्रों के संचय की आत्मविनाशी प्रतिद्वन्द्विता में उलझ गया है। प्राणघातक उपकरणों के संचय की यह प्रवृत्ति राष्ट्र के स्तर से व्यक्ति के स्तर पर उतर आई है। परिणामतः आज सर्वत्र व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्तर पर युद्ध और हिंसा की विस्फोटक स्थिति प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है।

ऐसी भयावह स्थिति से त्राण पाने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। अहिंसा द्वारा सामाजिक क्रांति का संदेश वहन करने वाले महान् समाजचिंतक वाणी का उद्घोष इस प्रकार किया है :

> सव्वेपाणा पियाउआ सुहसाया,
> दुक्खपडिकूला, अधियवहा।
> पियजीविणो, जीविउकामा
> सव्वेसिं जीवियं पियं।
> (आचारांगः २,२,३)

अर्थात् सभी जीवों का अपना आपुष्य प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। वध सभी को अप्रिय प्रतीत होता है और जीना सबको प्रिय लगता है। सभी प्राणी जीवित रहने की कामना करते हैं। सभी को जीवन प्रिय है। □

रामकृष्ण मिशन (बेलूड़ मठ) द्वारा श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द सेवाश्रम (मुजफ्फरपुर) का अधिग्रहण

स्वामी ऋतानन्द महाराज द्वारा स्थापित (१९२६), रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से अनुप्रमाणित यह सेवाश्रम, ७७ वर्षों तक निरन्तर अपना मठ-विपयक वैशिष्ट्य अक्षुण्ण रख, दीन-दुखी जनों को बहुआयामी सेवा प्रदान करते हुए अपनी विशिष्ट पहचान बनाये रहा।

श्रीरामकृष्णदेव के एक अन्यतम शिष्य श्रीमत् स्वामी रामकृष्णानन्द महाराज के पावन जन्म दिन २७ जुलाई, २००३ को इस सेवाश्रम का रामकृष्ण मिशन में सोल्लास विलय सम्पन्न हुआ।

एतदर्थ आयोजित समारोह में रामकृष्ण मिशन के अंतर्राष्ट्रीय महा सचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, सह-सचिव स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज, मठ/मिशन के अनेक शाखा केन्द्रों से आये वरिष्ठ संन्यासीगण, समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में बिहार सरकार के मुख्य सचिव श्रीयुत एस० एन० विश्वास (भा. प्र. से.), स्थानीय वरीय पदाधिकारीगण- डिविजनल कमिशनर, डी. आई. जी., जिलाधीश, एस. पी. आदि की गरिमामयी उपस्थिति से इसकी शोभा और गौरव में वृद्धि हो रही थी।

समारोह एक भव्य अनुष्ठान के साथ आरंभ हुआ। महासचिव स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ने सेवाश्रम के सम्मान में, घड़ी-घंटा एवं शंखध्वनि के बीच आश्रम की नाम पट्टिका के साथ ७७ गुब्बारों का एक गुच्छ आसमान में उड़ाकर उसे भावभीनी विदाई दी। साथ-साथ मिशन का ध्वजारोहन कर नये शाखा केन्द्र के रूप में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम की उदय-पट्टिका का अनावरण किया। यह बहुत ही मनोहारी, साथ-साथ मार्मिक दृश्य था। नई सत्ता के उदय से सवो के मन में हर्ष, उल्लास और नयी-नयी आशाओं का संचरण हो रहा था।

समारोह वेद मंत्रोच्चारण एवं स्वामी दिव्यव्रतानन्दजी के हृदयग्राही भजन-संगीत के साथ प्रारंभ हुआ। सेवाश्रम के निवर्तमान सचिव स्वामी प्रबुद्धानन्दजी ने समारोह के समवेत जनों का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए अपने स्वागत भाषण में संस्था के संक्षिप्त इतिहास एवं वैशिष्ट्य का उल्लेख कर, अति भाव-विह्वल स्वरों में विनम्रता एवं कृतज्ञता पूर्वक कहा कि रामकृष्ण मिशन में सेवाश्रम का यह विलय श्री श्रीठाकुर, माँ और स्वामीजी की असीम कृपा एवं बेलूड़मठ के वरिष्ठ स्वामीगण के आशीर्वाद से ही संभव हो सका है।

तदुनन्तर महासचिव महाराज ने मिशन की ओर से स्वामी प्रबुद्धानन्द से कुल चल-अचल संपत्ति समेत सम्बद्ध, विभिन्न अभिलेख एवं कागजात के साथ सेवाश्रम का अधिग्रहण कर, मिशन के इस नये शाखा केनद्र के नये सचिव स्वामी रधुनाथानन्द जी का परिचय कराते हुए इसका प्रभार उनको सुपुर्द कर दिया।

अपने सारगर्भित संबोधन में मुख्य अतिथि श्रीयुत विश्वास ने कहा कि वर्षों के त्याग, तपस्या एवं सच्चे अर्थ में जन सेवा से देश-विदेश में रामकृष्ण-मिशन की स्वंय-सेवी संस्था के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनी है। इसलिये हम सबों को मिशन के सम्बन्ध में अपने विचार और व्यवहार में इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये। मिशन द्वारा अपने विचार और व्यवहार में इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये। मिशन द्वारा अपने एक शाखा केन्द्र के रूप में सेवाश्रम के अधिग्रहण से बिहार को, खासकर मुजफ्फरपुर के लोगों को बहुत लाभ होगा। जरूररत सिर्फ इस बात की है कि सभी लोग मिशन को इसके लिये अपना सक्रिय सहयोग दें।

स्वामी शिवमयानन्द महाराज ने रामकृष्ण संघ की रूप-रेखा का संक्षिप्तं वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा कि मठ/मिशन के गृह त्यागी संन्यासी, ब्रह्मचारीगण, गृही भक्तगण एवं अनुरक्त जन सभी इस संघ के अंग हैं। मिशन का जन-सेवा मूलक क्रिया-कलाप इन सबों के

सहयोग से हो सुचारु रूप से होता आया है और आगे भी होता रहेगा।

स्वामी ब्रह्मेशानन्द महाराज ने संघ-गुरू के रूप में परमहंस-देव के अवदान का उल्लेख करते हुए कहा कि अपने दक्षिणेश्वर अवस्थान काल में ही उन्होंने अपने अंतरंग गृह-त्यागी भक्तों को पहचान लिया था और उनके जीवन का आदर्श और दिशा से उन सभी को परिचय करा दिया था। काशीपुर उद्यान में अपने जीवन के अंतिम समय में इन लोगों को संगटित कर गेरुआ वस्त्र प्रदान कर संन्यास जीवन के लिये प्रेरित किया था। और उन्होंने इस संघ के संचालन का भार नरेन्द्र नाथ (परवर्ती स्वामी विवेकानन्द) को सौंप दिया था।

स्वामी निखिलात्मानन्द महाराज ने संघ-जननी के रूप में माँ सारदा के अवदान का उल्लेख करते हुए कहा कि वेलुड़मठ की स्थापना के पहले माँ सारदा ने ठाकुर के कातर भाव से हार्दिक प्रार्थना की थी कि उनके गृह त्यागी संन्यासी भक्त संगटित होकर एक जगह रहकर ठाकुर के जीवन और शिक्षा का प्रचार-प्रसार करें और स्वंय आदर्श जीवन यापन करें। स्वामी जी समेत ठाकुर के सभी शिष्य माँ सारदा से अपने जीवन को दिशा निर्धारण एवं मठ संचालन कार्य के वारे में समय-समय पर उनसे परामर्श करते थे और उनका आदेश बड़ी श्रद्धा और विनम्रता के साथ शिरोधार्य करते थे।

स्वामी शशांकानन्द महाराज ने अपने देश वासियों के लिये, विशेषकर युवकों के लिये स्वामी जी के जीवन और संदेश की उपयोगिता और प्रासंगिकता का संक्षेप में निरूपण किया।

स्वामी रघुनाथानन्द महाराज ने अपने संवोधन में कहा कि मुजफ्फरपुर आकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ कि यहाँ के लोगों की मिशन के आदर्श, भावधारा एवं जन-सेवा-मूलक क्रिया-कलापों के प्रति सकारात्मक धारणा है। उन्होंने आशा जताई कि काल क्रम में यहाँ ज्यादा लोगों से उनका घनिष्ट सम्पर्क वढ़ेगा। और इस शाखा केन्द्र के विभिन्न क्रिया-कलापों के संचालन में लोगों का सक्रिय सहयोग मिलेगा।

अपने अध्यक्षीय सम्वोधन में श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ने मिशन में सेवाश्रम के विलय के प्रसंग में स्वामी प्रवुद्धानन्दजी के लगभग एक युग तक अथक प्रयास और उनके धैर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने इस शाखा केन्द्र के क्रिया-कलापों में लोगों से अपना सक्रिय सहयोग देने के लिए विशेष-रूप से अनुरोध किया।

अन्त में सेवाश्रम के निवर्तमान सह-अध्यक्ष डा० ए० वी० मजुमदार द्वारा धन्यवाद ज्ञापन, शिल्पी पशुपतिजी एवं पार्टी द्वारा भजन-गायन के साथ समारोह सम्पन्न हो गया।

सभा का संचालन रामकृष्ण आश्रम मैसूर के सचिव स्वामी आत्मविदानन्द जी महाराज ने सफलता एवं कुशलता पूर्वक किया।

•••••••••••••••

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में पुरस्कार वितरण समारोह आयोजित

श्री रामकृष्ण मिशन परिसर में आयोजित तीन दिवसीय प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण समारोह रविवार ९ नवम्बर को संपन्न हुआ। प्रतियोगिता में कनीय इंटरमीडिएट तथा वरीय वर्ग के तीन वर्गों में कुल ६०० प्रतिभागियों ने भाग लिया जिनमें अंतिम रूप से१५० छात्र-छात्राएं चुनी गई जिनमें ५२ प्रतिभागियों को पुरस्कार संस्था के डा. केदारनाथ लाभ, डा. एस. पी. नारायण, तथा तथा डॉ० रामानन्द शर्मा ने दिया। यह जानकारी देते हुए मिशन के सचिव स्वामी समर्पणानन्द ने कहा कि निर्णायक मंडल के सदस्य पूर्व प्राचार्य डा. सीता ओझा, श्री ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा तथा प्रो. रामानन्द राय थे। उन्होंने कहा कि चित्रकला, कविता पाठ, कहानी कहो, भाषण, काव्य रचना समेत कुल १२ तरह की प्रतियोगिताओं में सारण के अलावा सीवान के बच्चों ने भी भाग लिया। कनीय वर्ग में वर्ग दो से छठी कक्षा तक, इंटरमीडिएट वर्ग में ७ से ९वीं कक्षा तथा वरीय वर्ग में १० से स्नातक तक के छात्र-छात्राओं ने भाग लिय। इस अवसर पर सारण के आयुक्त श्री अजय नायक तथा आरक्षी अधीक्षक श्री कुन्दन कृष्णन भी उपस्थित थे।

•••••••••••••••

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र हे जो पिछले ७४ वर्षो से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को उद्देष्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर बनाने का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं -

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७' x ४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर(पूजागृह)	१८'-६" x १८'-६"
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७' x ४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७' x ४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	६१' - ६" x ५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित -

प्रभु की सेवा में,

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

कृपया ध्यान दें -

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा रामकृष्ण मठ, नागपुर के नाम पर भेजें। दान की राशि आयकर की धारा ८०- जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर - ४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in .

निर्माणाधीन श्रीरामकृष्ण प्रार्थना मन्दिर

रामकृष्ण मिशन आश्रम
नारायणपुर, जिला बस्तर (छ.ग.) ४९४६६१
✆ : (०७७८१) २५२२५१ टेलिफैक्स २५२३६३

सविनम्र निवेदन

प्रिय बन्धु,

भगवान श्री रामकृष्ण के आदर्शानुसार देश की एक अत्यन्त पिछड़ी जन-जाति, 'माड़िया' जनों का सर्वांगीण विकास साधित कर उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के अभिप्राय से रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर छत्तीसगढ़ के अत्यधिक पिछड़े बस्तर जिले के दुर्गम, सड़क-विहीन अबूझमाड़ अंचल में अपने ५ उप केन्द्रों के साथ सन् १९८५ से कार्यरत है।

अब तक संस्था द्वारा अपने नारायणपुर आधार शिविर (Base-Camp) के करीब १०५ एकड़ के विस्तीर्ण दो भूखण्डों में प्रमुखतया आदिवासी जनों के हितार्थ एक आदर्श आदिवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय - विवेकानन्द विद्यापीठ, ३० शय्या युक्त अस्पताल - विवेकानन्द आरोग्यधाम, चलित: औषधालय, विवेक-रथ **(Video-on-wheels)**, उचित मूलय दुकान समूह एवं कृषि प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण फार्म का निःशुल्क संचालन किया जा रहा है।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि संस्था को इस बीच अपने सुनियोजित तथा सुसंचालित सेवा अभियान में प्राप्त शानदार सफलताओं के लिए भारत व राज्य शासन तथा विशिष्ट औद्योगिक व सामाजिक प्रतिष्ठानों द्वारा संस्थापित अनेक ख्याति प्राप्त पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

भगवान श्री रामकृष्ण के जीवन तथा संदेश पर अवलम्बित हमारे इन सेवा प्रयासों को स्थिरता व गति प्रदान करने के लिए हम वर्षों से श्री रामकृष्ण देव को समर्पित एक विशाल तथा भव्य प्रार्थना मंदिर की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं जहाँ हमारे छात्र सहयोगी गण तथा नगर निवासी नियमित रूप से ध्यान व प्रार्थना कर समाज समर्पित अनुशासित व सुखी जीवन जीने की शक्ति प्राप्त कर धन्य हों। हमें विश्वास है कि केवल धनाभाव के कारण यह पुनीत कार्य सम्पन्न न हो सके यह आप निश्चय ही नहीं चाहेंगे। प्रार्थना मंदिर निर्माण कार्य पूर्ण करने के लिए हमें रू. २५ लाख एवं नव निर्मित ग्रंथालय भवन को उपयोगी ग्रंथों एवं आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करने के लिए रू. ५ लाख, इस प्रकार कुल रू. ३० लाख की आवष्यकता है।

अतः हमारा आपसे आन्तरिक अनुरोध है कि आप हमेशा की भाँति इस हेतु अपना भरपूर आर्थिक सहयोग प्रदान कर अनुगृहीत करें।

रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अनसार आयकर मुक्त होगा। दान विदेशी मुद्रा में भी स्वीकार किया जाएगा।

कृपया चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर' के नाम पर भेजें।

प्रभु आपका मंगल करें।

(स्वामी निखिलात्मानन्द)

सचिव

SRI RAMAKRISHNA ASHRAMA, YADAVAGIRI, MYSORE

Sri Ma Sarada Darshan

A humble offering in the form of an exhibition to commemorate the 150th Birth Anniversary of Holy Mother Sri Sarada Devi!

'Without Shakti (Power) there is no regeneration for the world. Mother has been born to revive that wonderful Shakti in India.'

- Swami Vivekananda

BROAD OUTLINE :

Obtain a Set of40 Nos. beautiful Multi-Coloured 19th x 29th Posters, depicting the life and message of the Holy Mother printed on thick Card Sheet, Mounted on Plastic Flute Board and Framed - For **Just Rs.1000/-** Conduct Exhibitions in your institutions/ areas and be blessed by spreading the Holy Message.

LANGUAGES AVAILABLE : English, Kannada, Bengali, Tamil, Telugu, Malayalam, Hindi, Marathi, Gujarati, Oriya and Assamese.

ELIGIBILITY: Any Organization or individual willing to conduct Exhibitions is eligible.

WRITE IMMEDIATELY: If you are willing to conduct exhibitions and send a minimum amount of Rs. 1000/- [Per Kit inclusive of transport] by Crossed Bank Draft in favour of **'Sri Ramakrishna Ashrama, Mysore.'**

GIVE YOUR FULL POSTAL ADDRESS INCLUDING PIN CODE NO. & CONTACT TELEPHONE NUMBER AND LANGUAGE PREFERRED.

LAST DATE: 15.01.2004 **KITS WILL BE DESPATCHED IN APRIL 2004**

APPEAL

PRODUCTION COST OF EACH KIT IS RS. 2,200/-, WE PLAN TO PRODUCE 1000 KITS IN ALL. THUS THE TOTAL EXPENDITURE IS RS. 22.00 LAKHS. Please Donate Liberally to this Massive Project and Get the Blessings of the Holy Mother. Donations however small are welcome.

Donations are exempt from payment of income Tax under Sec. 80-G of I.T.Act

Details Regarding Sponsorship

Individuals or Organizations are requested to support the great cause by ***SPONSORING*** one or more panels. ***Sponsorship of one Panel is Rs. 25,000/-.*** Sponsor's Name and place [or any other matter like "in Memory of.....etc.] will be printed as per the wish of Sponsor at the bottom of Panels. ***One Complimentary Kit will be issued to the Sponsor.***

Please write to :

Sri Ramakrishna Ashrama, (Sri Ma Sarada Darshan Dept.)
Yadavagiri, Mysore 570-020

Sarswati Printing Work's, Vrindavan Nagar, Bhagwan Bazar, Chapra Mb. No. 9835215591

हमारा हिन्दी प्रकाशन

शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण

तीन खण्डों में

प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००

तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विचित्र प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।